प्रकाशकीय

इस पुस्तक में विभिन्न विषयों पर विनोबाजी के साथ हुई चर्चाएं दी गई हैं। विनोबाजी पिछले नौ सालों से भूदान के सिलसिले में पैदल घूम रहे हैं और उनके ज्ञान और चिन्तन का लाभ बहुत-से लोगों को मिल रहा है। सच बात यह है कि विनोबाजी एक चलते-फिरते विद्यालय हैं और उनके साथ सीखने को जितना मिलता है, उतना किसी भी शिक्षा-संस्था में मिलना असम्भव है।

विनोबाजी की चर्चाएं बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं। छोटी-से-छोटी बात भी जब वह बताते हैं तो उसपर उनके गहरे चिन्तन की छाप होती है।

इस पुस्तक में बीसियों विषयों पर विनोबाजी के विचार पाठकों को पढ़ने को मिलेंगे। उनसे एक ओर ज्ञान में वृद्धि होगी तो दूसरी ओर व्यापक दृष्टि से सोचने की प्रेरणा मिलेगी।

हम पूर्ण विश्वास के साथ कह सकते हैं कि इस पुस्तक को जो भी पढ़ेगा वह अवश्य लाभान्वित होगा। आवश्यकता इस बात की है कि यह पुस्तक अधिक-से-अधिक पाठकों के हाथों में पहुंचे। आशा है, इसमें हमें विज्ञ पाठकों का सहयोग मिलेगा।

—मंत्री

प्रस्तावना

सन् १६३२ मे धुलिया-जेल मे क्रमश. अठारह रविवारो को गीता के
ठारह अध्यायो पर विनोबाजी के अठारह प्रवचन हुए। यह अमर साहित्य
र्गीय साने गुरुजी की कृपा से लिपिवद्ध होकर दुनिया को मिला। ये
वचन मूल मे मराठी मे दिये गए थे। उनका अब हिन्दुस्तान की प्राय सभी
पाओ मे अनुवाद हो चुका है। अंग्रेजी में भी उनका उल्था हो चुका है और
न्य पश्चिमी तथा पूर्वी भाषाओ में उनका अनुवाद होना असम्भव नही।

लेकिन गीता पर विनोबाजी के ये पहले ही प्रवचन नही है। सन्
६२१ के अन्त में साबरमती-आश्रम में नदी के किनारे छोटी-सी विनोबा-
टी के बरामदे मे रोज सायंकाल उनके ऐसे ही प्रवचन हुआ करते थे। उन
वचनो का जादू नये-नये शुरू हुए गुजरात विद्यापीठ के नौजवान छात्रो के
न पर ऐसा छा गया था कि छात्र हर रोज सध्या के समय तीन-चार मील
दल चलकर उन प्रवचनों को सुनने आया करते थे और अधेरी रात मे
पस जाया करते थे। मैं खुद उन दिनों साबरमती के आश्रम में ही रहता
और मैं भी आग्रहपूर्वक उन प्रवचनों से लाभ उठाता था। मैं कोई भी
स्तक, पत्र-व्यवहार या नोट्स का सग्रह अपने पास नही रखता हू। फिर
उन प्रवचनों के मोडी लिपि मे लिखे हुए नोट्स आज भी मेरे पास मौजूद
। उन प्रवचनो की छाप उन छात्रो के तथा मेरे आगे के जीवन पर कुछ
पडी ही होगी, फलत. उन जीवनों के द्वारा उन प्रवचनों का एक मूक
अव्यक्त प्रचार भी हुआ होगा। फिर भी मानना पडेगा कि साने गुरुजी
ी उपस्थिति मे हुए प्रवचनों की जो कद्र हुई उसकी तुलना में हमने उन
वचनो की जरा भी कद्र नही की।

किन्तु ये प्रवचन सिर्फ सन् १६२१ मे या १६३२ में ही हुए, सो बात
ही। पिछले नौ साल से वे हर रोज दो-तीन बार ही नहीं, वरन् रोजाना
न्द्रह-पन्द्रह घण्टे जारी रहे है। उनमें से कुछका टेप रेकॉर्डिंग होता है तथा
ोट्स भी लिए जाते हैं और भारत के ग्यारह प्रदेशो में प्रथम साप्ताहिकों

रा और पश्चात् पुनःप्रकाशन ग्राम जनता के लिए मुहैया किये जाते हैं। र भी अधिकतर प्रवचन आठ-दस कानों में व हवा में विलीन हो जाते । इस अनमोल साहित्य का, इन शास्त्रवचनों का, संकलन तथा प्रकाशन न करेगा ?

"यानेवां स्वैरकथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि।"

—उन सन्तों की, महापुरुषों की, जो सहज बातें होती हैं वे ही शास्त्र नती हैं। विशेषतः विनोबा की पदयात्रा में उनके दर्शन के लिए दूर-दूर से ानेवाले लोगों के साथ उनकी नाना विषयों पर प्रचण्ड सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, ूक्ष्मतम चर्चा चलती है। बहुत सारे लोग पांच-पांचसौ मील की दूरी से मलने के लिए आते हैं और पदयात्रा के समय पांच दस मिनट का मौका ाकर अपने-अपने प्रश्नों, शंकाओं, कठिनाइयों का हल हासिल करते हुए ्वाश और प्रेरणा लेकर वापस लौटते हैं। कुंदरजी ने विनोबाजी की दयात्रा को 'जंगम विद्यापीठ' नाम दिया है। लेकिन मुझे लगता है कि उसमें यात्रा का पूरा मूल्यांकन नहीं होता।

धुलिया जेल में सभा में दिये गए प्रवचनों का संग्रह साने गुरुजी जैसे समर्थ लेखक ही कर सके। लेकिन इन चलते-दौड़ते प्रवचनों का संग्रह अपने स्मरण में से नियमित रूप से करने का विक्रम कुंदरजी ने किया। इस वास्ते हजारों पाठक कुंदरजी का अहसान मानेंगे।

इस संग्रह में से चार प्रवचन स्वयं मेरे लिए हुए हैं। इसलिए कुंदरजी ने अपनी इस पुस्तक के लिए प्रस्तावना लिखने का अनुरोध मुझसे ही किया है। लेकिन इसमें मैं बहुत ही शर्मिन्दा हुआ हूं। उनका संग्रह करने की जिम्मेदारी खुद मेरी ही थी। लेकिन अपने हाथ आया हुआ यह प्रसाद मैंने लापरवाही से गंवाया। वह तो मेरे भी काम न आता, औरों की तो बात ही क्या ? किन्तु कुंदरजी की कृपा से वह सबके लिए सुलभ हो गया है। रसिक-भावुक लोग उसका यथेष्ट सेवन करें।

—अप्पा पटवर्धन

ाद से प्राप्त पते का भजन है यह। उसीमे उसे सदा आनंद आता है। से न आयगा ?"

भूदान, सम्पत्तिदान, ग्रामदान आदि सब उसी सर्वोदय के नितनूतन अंकुर । सर्वोदय-पात्र उसका बिलकुल नया अंकुर है। 'मुट्ठी भर अनाज और नियाभर मे शान्ति' यह है उसकी महिमा। अणु मे प्रचंड शक्ति रहा करती । पर उसे प्रकट कराने की कुशलता चाहिए। यह सर्वोदय धर्म अणु ही । उसकी शक्ति प्रकट करने की कुशलता सर्वोदय-पात्र मे निहित है। नोबाजी ने अणु भी दिया है और उसके विस्फोट का मार्ग भी बतलाया । उन्होने कल्याणकारी, शक्तिशाली तथा सर्वसुलभ साधन जनता को सौंप दिया है। इसके बाद उनका कार्य समाप्त हो गया है।

"तुम्हेहि किच्च आतप्पं अक्खातारो तथागता।"

—यत्न करना तुम्हारा काम है तथागत तो केवल पथ-प्रदर्शक है।

इस मार्ग के पथिक जहां कहीं होंगे, वहीं 'संघ' है।

इस शरण-त्रयी का स्मरण करके विनोबाजी के पावन सान्निध्य मे बिताये हुए कतिपय सप्ताहो की यह दैनंदिनी मैं पाठकों की सेवा मे उपस्थित कर रहा हू। पदयात्रा मे विनोबाजी के साथ जो चर्चाएं हुई, उन्हींको यहां प्रधान रूप से अंकित किया गया है। २५-११-५७ को मैं विनोबाजी के पास पहुंचा और अगले दिन से लेकर १-१-५८ याने जिस दिन मैं उनसे बिदा हुआ, उस दिन तक की चर्चा यहां संकलित है। एक अखंडित समयावधि की यह दैनंदिनी है, इसलिए उसे यहां इकट्ठा किया है।

इसके बाद जब मैं फिर उनके पास गया तब फिर से चर्चा शुरू हुई। उसे स्वतंत्र रूप से संग्रहीत किया है। वह अवसर यथावसर प्रकाशित किया जायगा।

बौद्ध धर्म और पाली भाषा के अध्ययन के लिए मेरे श्रीलंका जाने के बारे मे योजना बन रही थी। ऐसे अवसर पर विनोबा के पास रहने का मौका मिला, जिसको मैंने सहर्ष स्वीकार किया। जिसके लिए श्रीलंका जाना था, वह यहां अनायास ही प्राप्त हुआ। श्रीलंका के किसी भिक्षु के पास जाने के बजाय साक्षात् बुद्ध के ही सान्निध्य मे क्यों न जाया जाय ?

'षड्भिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः' —ये हैं उस प्राचीन बुद्ध के नाम। इस आधुनिक बुद्ध का भी नाम वही है—विनायक, और वह काम भी वही कर रहा है। क्या यही नहीं है वह मैत्रेय बुद्ध, जिसकी प्रतीक्षा की जा रही है? इसके मुख से भी वही आर्य सत्य, वही करुणा और वही मैत्र प्रसृत किया जा रहा है। इसका हर पद (वचन) धर्मपद है, और पदयात्रा धर्म-विहार है। वह बुद्ध केवल काशि-कोसल में सचार करता था, यह बुद्ध अखिल भारत मे सचार कर रहा है। पूज्य विनोबा ने धर्मपद का रचनातर किया है, उसे मैं धर्मपद की नव-सहिता कहता हूं। यह नव-संहिता सपूर्ण पद-सूची के साथ प्रकाशन के मार्ग पर है। बाद मे उसका सरल गद्यानुवाद दिया जायगा, जो भारत की चौदहों भाषाओं मे प्रकाशित हो जायगा। इसी काम से मैं वहा गया था। इसलिए भगवान् बुद्ध, बौद्ध धर्म तथा सबद्ध विषयो की चर्चा अगले पृष्ठों मे अनेक बार छिड़ी है। इसके अलावा और भी छोटे-मोटे विषयो की चर्चा की गई है। ये तो है स्वैरकथाए ही। स्वैरता के कारण उनकी विविधता के साथ विश्रब्धता भी लक्षणीय है। लक्षणीय है, इसीलिए रक्षणीय भी।

कहा है—'ब्रू यु. स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत।'—प्रिय शिष्य के सम्मुख गुरु रहस्य भी खोल दिया करते हैं। इस न्याय के अनुसार कई गुह्य वातें भी इसमे सम्मिलित हुई हैं। प्रार्थना यही है कि उन्हें बिना शब्दो के हृदयस्थ किया जाय। ये बातें मैं उसी दिन लिख डालता और वल्लभ-स्वामी, तिमप्पा, गुलबाड़ी, अप्पासाहब, बलवंतसिंह आदि उन्हे पढ़ते या सुनते, और उनकी यथार्थता के बारे मे समाधान प्रकट करते।

इतना कहने के बाद कहने के लिए कुछ नही बचता। पुस्तक पाठकों के हाथ मे है। कुछ कहना ही हो तो इतना कहूगा कि इसमें जो अच्छा है, वह बड़ों का है। अगर कही कुछ अनुचित लगे तो आप समझ लें कि वह जान-बूझकर की गई गलती नही, अनजान मे हुई भूल है और उसके लिए मे क्षमा-प्रार्थी हू।

ब्रह्म मंदिर,
गोपुरी, वर्धा.

—कुंदर दिवाण

विषय-सूची

मे 'सूकरमद्दव' खाकर ही बुद्ध चल बसे। लेकिन मैने कही पढ़ा है कि 'सूकर-मद्दव' का मतलब 'मांस' नही। बुद्ध से ४० साल पहले महावीर का उदय हुआ था। उनका जीव-दया का उपदेश सब क्षेत्रों मे फैला हुआ था, और बुद्ध ने भी शुद्ध प्राणाघात-निवृत्ति का सिद्धान्त प्रसृत किया था। ऐसी अवस्था मे विश्वास नही किया जा सकता कि वह मांस खाया करते थे, या मांस खाकर वह मर गये।

भिन्न भाषा, समान विचार

धम्मपद मे हमारे विचारो या आचारो के प्रतिकूल परिभाषा क्या पाई जाती है, इसका विचार करना चाहिए। उस प्रकार की परिभाषा उसमें मैने नही पाई। योग, सयोजन आदि शब्द उसमे पाये जाते हैं, पर उन्हे व्यापक अर्थ मे समझ लेने मे कोई दिक्कत नही रहती। बौद्ध तथा जैन परिभाषा मे योग का अर्थ बधन है, फारसी परिभाषा मे 'असुर' का अर्थ 'देव' तथा 'देव' का 'राक्षस' रहता है, पर इस शब्द-भेद के बावजूद विचारैक्य लक्षणीय है।

बुद्ध मौनी हुए

'कलीलागि भाला असे बौद्ध मौनी' (कलियुग मे बुद्ध मौनी होगये हैं)—सत रामदास के इस वचन मे बड़ी मार्मिकता मैं महसूस करता हू। उसमें बुद्ध को मौनी कहा है, यानी आत्मा, ब्रह्म आदि बातो के बारे मे मौन धारण करनेवाला कहा है। बुद्ध ने इन बातो का निषेध नही किया है। मा अपने बच्चे को नाम से बार-बार पुकारती है, पत्नी पति का नाम नही लेती। पर दोनो के मन मे प्रेम तो समान ही रहा करता है। बुद्ध स्वर्ग-...जन्म-पुनर्जन्म, बध-मोक्ष आदि बातो मे विश्वास करते है, तो ...कहा ? आप कहते हैं—**'गेहकारक दिट्ठोसि'** (गेहकारक तुम ...देखनेवाला कौन है ? वह उस 'गेहकारक' को 'वधइन्' को ...। है कि वह (वधइन्) फिर से बधन मे नही डाल ...का लक्षण बिल्कुल नही। आत्मा के स्वरूप के ...गी तो भले ही रहें। हिन्दूधर्म में वह मौजूद है ही।

अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत आदि विश्वास-भेद आत्मा के स्वरूप के संबंध में मतभेद के ही निदर्शक है। उसी प्रकार बुद्ध का भी भिन्न मत हो सकता है।

जाति-भेद-भंजन अवतार-कार्य नही

दिखाई नही देता कि बुद्ध ने जाति-भेद का उच्छेद किया। उसे उनका अवतार-कार्य नही कहा जा सकता। ऐसा मानने से यह कहना पड़ेगा कि भगवान् का अवतार व्यर्थ हुआ; क्योकि जाति-भेद अब भी बना ही हुआ है। एकनाथ ने भी भेड के बच्चे को गोद में उठा लिया था, जात्यभिमान का तीव्र निषेध किया था। सभी सन्तों ने ऐसा किया है। लेकिन वे जात्युच्छेद पर तुले थे, यह नही कहा जा सकता। बुद्ध के बारे मे भी यही मानना चाहिए। हा, यह कहा जा सकेगा कि और सन्तों की अपेक्षा बुद्ध की भावनाए इस विषय में तीव्रतर थी। वह उनकी नसीहत थी। वह उनका जीवन-कार्य नही था। अब यह कार्य-क्रम हमे अपनाने के लिए बाकी है। चाहे तो हम उसे अपना सकते है।

बुद्ध हिंदू ही थे, पर थे सुधारवादी

सक्षेप में, बुद्ध हिन्दू-धर्म के एक महान् सुधारक थे, वह हिंदू थे और हिंदू रहकर चल बसे। यह है मेरा विश्वास। हमारे समाज ने भी उन्हे अवतार मान कर यही मान्य किया है। संन्यासी के नाते वह धर्मातीत होकर मरे, हम कह सकते है। यह बात वैदिक सन्यासी को भी लागू है। साराश यह कि यह सिद्ध नही होता कि वह अपनी खिचड़ी अलग पकाना चाहते थे।

मलेबेन्नूर के मार्ग पर,
२६ नवम्बर १९५७

: २ :

चीनी संत लाओत्सी का ताओ

विनोबा—लाओत्सी का 'ताओ' तन् धातु से निकला हो। 'तन्', 'ताय',

'तायी' शब्द वेदों में पाये जाते हैं।

मैंने कहा—लाओत्से-प्रणीत 'ताओ तेह किंग' ग्रंथ में ब्रह्म-विद्या तथा निष्काम कर्मयोग का स्पष्ट रूप से उपदेश पाया जाता है। जान पड़ता है, किसी औपनिषदिक ऋषि से यह विचार उसे प्राप्त हुआ हो। वह बुद्ध का समकालीन या उससे जरा-सा प्राचीन है। इससे यह मालूम होता है कि बुद्धपूर्व काल में वैदिक धर्म चीन में तथा अन्यत्र भी गया था।

विनोबा—यह संभव है। इसीलिए मैं कहता हूं कि 'ताओ' शब्द 'तनु, ताय, तायी' से व्युत्पन्न हुआ हो।

'रहीम ताओ तू' में रहीम पश्चिमवाला है, तो ताओ पूरबवाला। इसके अलावा रहीम में प्रवृत्ति है, तो ताओ में निवृत्ति। उस रचना में दोनों प्रवृत्तियों का समन्वय हुआ है।

मलेबेन्नूर,
२६-११-५७

: ३ :

जगत् के धर्मग्रंथ

सुबह ५ बजकर ५ मिनट पर मलेबेन्नूर से निकले। आज का पड़ाव आठ मील के फासले पर बेल्लोडी ग्राम में होनेवाला था। आज ठंड का प्रकोप जरा कम था, या यों कहिये, हवा कम चलती थी। आज रास्ते में नदी थी। विनोबा और कई लोग नाव में बैठकर नदी पार कर गये। हम पैदल ही चले। सूर्योदय के समय यात्रा थोड़ी देर के लिए रुक गई। सूर्याभिमुख होकर विनोबा सूर्यबिंब के ऊपर आने तक एकटक देखते रहे। कुछ मंत्र भी उन्होंने पढ़े। यह समग्र सूर्योपस्थान—सूर्य का प्रातरुपस्थान—पूरा हुआ और यात्रा फिर से जारी हुई। आज पहले मैंने ही चर्चा का सूत्रपात किया। सूर्योपस्थान के समय तक मुझसे चर्चा चलती रही। बाद में बडईकन्नों से नया हिंद-दीप में बलवन्तसिंह से भी बातचीत हुई।

बुद्ध का प्राचीन साहित्य से परिचय नही

बडी देर तक चलने के बाद जब मैने देखा कि विनोबा बोल नही रहे है, तो मै आगे बढा और बोला—विनोबाजी, भगवान् बुद्ध के समय मध्यदेश मे बुद्ध के साथ ही कुल सात धर्म-प्रवर्तक विचरण कर रहे थे। बुद्ध स्वय ज्ञान की खोज मे निकले थे। गीता, उपनिषद्, वेद आदि से उनका परिचय आवश्यक था। लेकिन धम्मपद आदि साहित्य से नही दिखाई देता कि उनका उनसे अच्छा परिचय रहा हो। मुझे इस बात का आश्चर्य होता है कि गीतोपनिषद् वेदादि साहित्य की उक्तियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष उल्लेख उनके द्वारा कही भी किया हुआ नही पाया जाता।

बुद्ध पढे-लिखे नही थे

विनोबा बोले—बुद्ध पढे-लिखे पडित नही थे। उनके पिता ने उन्हे सुख मे रखने का प्रबन्ध किया था। यह अचरज की बात नही कि उन्होने बुद्ध को अध्ययन के कष्टो से भी दूर रखा हो। इस कारण प्राचीन वैदिक साहित्य से वह परिचित नही थे। उपनिषद् तथा गीता की रचना हुए युगो बीत गये थे। हजार-हजार बरस व्यतीत हो चुके थे। गीता जब कही गई तब उपनिषदो का लोप हुआ था। उन्हें कोई बिरला ही जानता था। 'स कालेनेह महता योगो नष्ट. परंतप' गीता मे कहा है। बुद्ध के समय मे भी यही बात हुई होगी। इसमे अचरज ही क्या! वेदो और उपनिषदों के बीच इससे भी अधिक समय बीत चुका था। इसके अलावा उस समय ज्ञान-प्रचार के आज जैसे साधन उपलब्ध थे ही नही।

ब्रह्मविद्या की अपेक्षा योगशास्त्र अधिक प्रचलित

मैने कहा—जान पड़ता है कि बुद्ध, जिन दोनो—अलारकालाम और उद्रक रामपुत्र—के पास गये थे, उनसे उन्हे प्रमुखत. समाधि-योग का ज्ञान प्राप्त हुआ था। पतजलि मुनि उस समय या उससे कुछ पूर्व होगये हो। मुझे लगत[illegible] इसी कारण ब्रह्मविद्या की अपेक्षा योगशास्त्र का [illegible] हो।

सूत्रग्रंथ दर्शनशास्त्र की प्रगति के निदर्शक

विनोबाजी बोले—पतंजलि का समय उसके आसपास रहा हो, पर योगदर्शन पुराना ही है। दर्शनशास्त्र जब पूर्णावस्था को पहुंच जाता है तब सूत्रग्रंथों की निर्मिति होती है। पतंजलि के पूर्व योगदर्शन का पर्याप्त विकास हुआ था। उन्होने उसे सूत्र-रूप में ग्रथित किया है।

गीता का प्रचार पहले नही था

आज जिस प्रकार हमारे बीच गीता का प्रचार दिखाई देता है वैसा पहले नही था। शंकराचार्य-प्रणीत भाष्य के अनन्तर ही उसका पुनरुज्जीवन हुआ। उसके पूर्व गीता पर ज्ञान-समुच्चयवादी टीका-ग्रंथो के अस्तित्व का पता शांकरभाष्य में चलता है, तथापि गीता का बहुत अधिक प्रचार नहीं पाया जाता। शंकराचार्य के बाद रामानुज आदि अन्य आचार्यों ने भाष्य रचे, जिनका प्रचार हुआ। तो भी गीता का प्रचार केवल पंडितो तक सीमित था, आम जनता उससे अपरिचित रही।

ज्ञानदेव का महदुपकार

लेकिन ज्ञानेश्वर ने 'ज्ञानेश्वरी' का प्रणयन करके गीता को आम जनता तक पहुंचा दिया। अन्य प्रांतो में ऐसा प्रयास कही नही किया गया। यह ज्ञानदेव का महाराष्ट्र पर बड़ा अहसान है। एकनाथ ने उन्हीका अनुसरण किया। भागवत के दशम स्कंध से उन्हे बड़ा प्यार था, लेकिन उन्होंने टीका लिखी एकादश स्कंध की। उस टीका-ग्रंथ में उद्धव को भगवान् का दिया उपदेश ग्रथित किया है। अन्य प्रांतो में यह नहीं पाया जाता।

गीता ही हिंदूधर्म का प्रमुख ग्रंथ

आधुनिक समय में ईसाइयों के 'बाइबिल' के समान हमारा कौन-सा 'ग्रंथ' है, इस बात का विचार करते हुए सबकी दृष्टि गीता पर पड़ी। वही हिन्दूधर्म का प्रमुख ग्रंथ कहला सकेगा। आज के युग मे तिलक, अरविंद, गांधी आदि ने उसीपर बल दिया। इस कारण वह जनता मे प्रसार पा गया है। वैसा प्रसार उसका पहले कभी नही था। दूसरा कोई ग्रंथ उसका

प्रतिद्वन्द्वी नही है। गीता में ज्ञान है, कर्म है और साथ-ही-साथ भक्ति भी है। वही उसकी ताकत है। भक्ति के कारण ही वह लोकमान्य होगया है। उसमे सब है। उसमे जो बातें नहीं हैं वे हिंदूधर्म में यद्यपि पाई जाय तो भी वे हिंदूधर्म के सारतत्त्व नही हैं। व्रतबंध-विवाह की विधियां गीता मे नही हैं। उन्हे अगर कोई आचरण मे न लाये तो भी नही कहा जा सकता कि वह हिंदू नही है। ऐसा यह गीताग्रंथ जगत् का ग्रंथ होगा। इसमें जो कृष्णो-पासना है, उसका व्यापक व्यक्ति-निरपेक्ष आशय समझ लेने से यह संसार मे मान्यता पा जायगा।

व्यक्ति-निरपेक्ष गीता ससार का धर्मग्रंथ

कबीरपंथियों का विश्वास है कि कबीर कोई व्यक्ति नही, वह एक शक्ति है। न उसने ब्याह किया था, न उसके कोई पुत्र था। कबीर याने महान्। कबीरपंथी कहते हैं—देखिये, कबीर का नाम उपनिषदो मे मिलता है 'कविर् मनीषी परिभूः स्वयंभूः।' वैसे ही कृष्ण को भी व्यक्ति नही समझना चाहिए। यह हो जाय तो गीता जगत् का धर्म-ग्रंथ हो सकेगी। उसमे वह लियाकत है।

गीता के प्रतियोगी धर्मग्रंथ

बाइबिल मे का मैथ्यू तथा धम्मपद गीता के प्रतियोगी धर्मग्रंथ हैं। कुरान शरीफ अरबी भाषा के कारण जोरदार मालूम होता है, लेकिन अनुवाद मे उसका आकर्षण जाता रहता है। भाषा ही उसका बल है। वह अरबी भाषा का अभिजात ग्रंथ है। उसमे मनुस्मृति की भांति कुछ कानून, भागवत की भांति कुछ भक्ति-भावना, कई कथाएं और थोडा-सा तत्त्वज्ञान है। मेरा विचार है कि उसका निचोड निकालूं। पर जब बनेगा तब। इस अवस्था में कुरान दुनिया का धर्मग्रंथ नहीं हो पाता। वह गीता का प्रति-योगी नही। जिन्हें ईश्वर के प्रति खिंचाव नहीं, आदर-भाव नहीं, उन्हें धम्मपद बड़ा ही आकर्षक लगता है, इस कारण वह दुनिया का धर्मग्रंथ है।

दरिद्र, दुबला और जड से मतलब है लक्ष्मी, शक्ति तथा सरस्वती तीनों देवियों की परवा न करनेवाला, केवल भगवच्छरण।

मैं—आपने कमाल कर दिया इस अफीम को मुफ्त की कहकर। सब दुःख हरनेवाली यह विस्मरण की दवा बिना मूल्य है। उसे अफीम भले ही कहे, पर अफीम के पैसे देने पडते हैं, जो दोष इस अफीम में विद्यमान नही। और इसे आपने अफीम कहा तो भी कोई चिंता नही। यह देखिये, मैं मजे मे हू, न किसी प्रकार की चिंता है, न किसी प्रकार की परवा!

बेल्लोडी के पथ पर
२७-११-५७

: ४ :

धर्म-प्रसार और राजसत्ता का आधार

आज ५-३० पर निकल पडे, आधा घटा देर से, क्योंकि पडाव हरिहर पाच मील के फासले पर था। समय भी कम था। इसलिए मैंने चर्चा में *भाग नही लिया। बलवतसिह और बबईवाले के साथ ही चर्चा जारी रही।*

हरिजनों की दशा

प्रारम्भ मे बलवतसिह ने बेल्लोडी की जानकारी दी। गाव की आबादी में मुसलमान और हरिजन काफी तादाद में है। पहले उनके पास जमीन थी। कर्ज के मारे जमीन धीरे-धीरे सवर्णों के हाथ मे चली गई और अब वे सिर्फ मजदूर बन गये हैं। मर्द की मजूरी १२ आने और औरत की ६ आने। यह भी बारह महीने नसीब नही।

धर्मांतर हरिजनों मे से हुआ

विनोबा बोले—सवर्णों ने हरिजनो पर पुरातन काल से अन्याय किया है और आज भी उनकी आखे नही खुलती। ईसाइयो और मुसलमानो ने उन्ही मे से धर्मान्तिर किये। कोई भी उच्चवर्णीय मुसलमान या ईसाई नही

बना। न मुसलमान को उन्होंने अपने से उच्च माना, न ईसाई को। और दिखाई क्या देता है? मद्य-मांस को न छूनेवाला आदमी धर्मांतर के बाद शराबी, मांसाहारी बन जाता है। इसका मतलब यह है कि वह अवनत हो जाता है, उसकी उन्नति नहीं होती। वह सुसंस्कृत नहीं बनता, बल्कि तामस बन जाता है।

भारत में ईसाई धर्म बहुत पुराना

वैसे तो ईसाई धर्म हिंदुस्तान में ईसवी सन् की पहली सदी में ही आया है। ईसा के बारह शिष्यों में से एक तो ईसा के जीवनकाल में ही समाप्त हो गया था। बाकी ग्यारह में से सेंट थॉमस दक्षिण में मलाबार में आया था। वहां उसने ईसाई धर्म का प्रसार किया। पर वह ज्यादा फैल नहीं पाया।

ईसाई धर्म के बारे में मेरा पूर्वाग्रह

लेकिन बाद में पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेज आये और राज्यकर्ता बने। उन्होंने सत्ता के बल पर, अत्याचार से धर्मान्तर जारी किया। मुसलमानों ने भी वही किया। इसलिए उनके धर्मों के बारे में कभी भी अनुकूल मत नहीं रहा। गोरा आदमी देखकर मेरे दिल में घृणा पैदा हुआ करती।

मैं साबरमती आश्रम में था। वहां एक बार एड्रूज आये। बापू ने उनसे मेरा परिचय करा दिया। बापू बोले—'आश्रम में लोग आते हैं कुछ सीखने, कुछ ले जाने। पर यह आया है आश्रम में कुछ देने। इससे आश्रम बहुत-कुछ पायेगा।' यह बात बाद में महादेवभाई ने मुझसे कही।

एड्रूज एक बार वर्धा पधारे थे। उनका सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। अध्यक्ष मैं था। एड्रूज निष्कलंक तथा सच्चे धर्मनिष्ठ थे। व्याख्यान के बाद मैंने उनसे माफी मांगी। मैं बोला—"ईसाइयों के बारे में मेरे मन में असद्भाव था, घृणा थी। मैं माफी चाहता हूं।"

एड्रूज बाद में जमनालालजी से बोले, "यह आदमी अजीब दिखाई [illegible] ...मय में बापू ने मुझसे पहले ही कहा था, लेकिन आज ...। कितना सच्चा दिल है! इसे क्या जरूरत थी मुझ... ...ने थोड़े ही उसके दिल में झांका था? जमनालाल-

जी पर भी इस बात का बड़ा असर हुआ। वह बोले, "जो सत्यनिष्ठ बनना चाहता है उसे चाहिए कि वह अपना दिल साफ रखे। इसकी मिसाल मुझे मिल गई। मन मे कही भी मलिनता को रहने नही देना चाहिए। कोना-कोना साफ रखना होगा।"

ईसाई धर्म क्यों नही फैला ?

ईसाई अगर राजसत्ता का आधार धर्म-प्रचार के लिए न लेते तो वह धर्म अपनी सेवापरायणता के बल पर भारतीय धर्मों मे से एक बन जाता, लेकिन वैसा नही हो सका। राजम्मा के पिता सनातनी हिन्दू है। उनके देवगृह मे पचायतन है। वही ईसा की भी तस्वीर है। ईसाई अगर जुल्म-जबरदस्ती का पल्ला न पकड़ते, राजसत्ता का आधार न लेते, तो ईसा को एक सत के रूप मे हिन्दुओ के देव-मन्दिर मे स्थान मिल जाता।

मद्रास की तरफ एक पादरी सन्यासी बना और उसने अनेकों को ईसाई धर्म मे दीक्षित किया। यह स्वेच्छा से होगया। इस प्रकार ईसाइयो ने सेवा-भाव से काम लिया होता तो ईसा जरूर हिन्दुओं की सन्तमालिका में स्थान पा जाते और वह धर्म यहा मिलकर प्रसार पा जाता। लेकिन उनकी प्रेरणा धर्म-प्रचार की है और उसीके लिए उनका सेवा-भाव है। इस कारण से और राजसत्ता पर निर्भर रहने से वह धर्म भारत के लिए पराया रहा और इस समाज के लिए अपनापा नही पैदा हुआ।

इस्लाम का भी वही हाल

महमदी धर्म का भी हाल वही हुआ। वह भी राजसत्ता के बल-बूते पर पनपा। यही वजह है कि उसके विषय मे, उसके धर्मग्रन्थ कुरान के बारे मे, लोगो के दिल मे अजीब-अजीब धारणाए घर कर गई। मै जब कुरान का अध्ययन करने लगा, तब एक बड़े आदमी ने मुझे लिखा कि 'चूकि आप कुरान का अध्ययन करते है, उसमे जरूर अच्छाई भी है। वास्तव मे जो करोड़ों लोगों का धर्मग्रन्थ है उसके बारे मे सहज-भाव से यह धारणा चाहिए कि वह बुरा होगा कैसे। लेकिन यह कैसी अजीब बात है कि उस कारण से नही, बल्कि मै उसे पढ़ रहा हू, इस वजह से उसमें अच्छाई देखी जाय!

लेकिन यह धारणा धर्म के नाम पर राजसत्ता-कृत अत्याचारों का परिपाक है। इसलिए धर्म को चाहिए कि वह राजसत्ता का आश्रय न ले।

हरिहर की राह पर
२८-११-५७

: ५ :

बुद्धमत और कूटस्थ आत्मतत्त्व

सुबह ५ बजे हरिहर से चले। अगला पड़ाव दावणगेरे नौ मील की दूरी पर है। वहा कपडे की तथा तेल की मिलें हैं। शहर व्यापारी है। वहां दो दिन ठहरना है। आज हमारे साथ वल्लभस्वामी भी हैं।

बुद्ध के अनात्मवाद का स्वरूप

थोडी देर चलने के बाद मैं बोला—विनोबाजी, भगवान् बुद्ध ने अपने मार्ग को मध्य मार्ग कहा है। न वह क्रियावादी थे, न अक्रियावादी। उनके विशिष्ट सिद्धान्त से अनात्मवाद उद्भूत हुआ है। यह मेरा मतव्य है। वेदान्ती कूटस्थ नित्य आत्मा मानते हैं। इस कारण उनका सिद्धान्त है कि ज्ञान से ही कैवल्य की प्राप्ति होती है (ज्ञानदेव तु कैवल्यम्)। उनकी धारणा है कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए किसी भी कर्म की आवश्यकता नही। भगवान् बुद्ध के समय जो अक्रियावादी थे और जो क्रियावादी थे, दोनो मे भिन्न मत बुद्ध ने अपनाया है। इन दो अन्तिम स्थितियो के बीच उनका मत था। एक बार उनसे पूछा गया—आप क्रियावादी हैं या अक्रियावादी? वह बोले—"मेरा कहना है कि अकुशल कर्म नहीं करने चाहिए, इसलिए मुझे अक्रियावादी कहा जा सकेगा। और मैं कहता हू कि कुशल कर्म करने चाहिए, इसलिए मैं क्रियावादी भी कहला सकता हू।" इसका मतलब यह है कि उन्हे सन्-क्रियावादी कहना पडेगा। अर्थात् वह कूटस्थ नित्य आत्म-तत्त्व नही मानते थे, वरन् परिणामि-नित्य आत्म-तत्त्व के वह कायल थे। मालूम होता है कि यही उनका सम्यक ज्ञान या सबोधि है।

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः।
फलं कर्मायत्तं यदि, किममरैः किं च विधिना ?
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥

मेरी राय में यह भर्तृहरि-प्रणीत श्लोक बुद्धमत का ही प्रतिपादन करता है। कहना पड़ता है कि अपने शुभ कर्मों के अनुसार मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नत होता जाता है, इसी प्रकार निरंतर उन्नति करते जाना ही उसका स्वभाव है—यह बुद्ध का मन्तव्य था। इसके अनुकूल यह है कि आत्मतत्त्व निरंतर विकासशील है। नारदभक्ति-सूत्र में इसके अनुकूल विचार पाया जाता है। उसमें कहा गया है—वह 'प्रतिक्षणवर्धमानं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम्' है। इस विषय में आपकी सम्मति क्या है ?

बुद्ध ज्ञानवादी ही थे, कर्मवादी नहीं

विनोबा—बुद्ध का मध्यमार्ग संयतता या सुवर्णमध्य (गोल्डन् मीन्) का वाचक नहीं। उसके लिए बुद्ध की आवश्यकता नहीं। यदि बुद्ध मोक्ष में विश्वास न करते तो उन्हें कर्मवादी कहना उचित होता। लेकिन जब वह मोक्ष में विश्वास करते हैं तब वह अवस्था 'कर्म' से प्राप्त कैसे होगी ? वह मोक्षरूप शुद्धि अगर कर्म द्वारा प्राप्त होनेवाली हो, तो वह मलिन होगी। उसे फिर से शुद्ध करना होगा। वह मोक्षावस्था कैसी, जिसे बार-बार शुद्ध करना पड़े ?

कर्म का आधार क्या ?

मैंने पूछा—फिर कर्म का आधार क्या है ?

विनोबा—कर्म का आधार यही देह है। उसके लिए अलग आधार की आवश्यकता नहीं। मोक्ष के लिए आधार की आवश्यकता है, वह है आत्मा।

आत्मतत्त्व का विचार

मैं—क्या यह कहा जा सकता है कि बुद्ध कूटस्थ नित्य आत्मतत्त्व

मानते थे ?

विनोबा—गीता कूटस्थ नित्य आत्मतत्त्व मानती है, लेकिन उसने और वादों का भी निर्देश किया है। गीता यही कहकर नहीं ठहरती कि 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु', इतना ही कहती तो वह दुःख का, शोक का, कारण हो जाता। उसीके साथ गीता कहती है—'ध्रुवं जन्म मृतस्य च'। इसका अर्थ 'देहातीत नित्य तत्त्व माना गया है' नहीं लिया, तो भी मरने के बाद अपरिहार्य रूप से जन्म होगा ही, यह अर्थ अभिप्रेत है। इसलिए शोक का कोई कारण नहीं रहता। इसके अलावा कहा गया है—'अथ चैनं नित्य-जातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्'। उसका अनुवाद गीताई में यों किया है—'अथवा पाहसी तू हा मरे जन्मे प्रतिक्षणीं' (या तुम इसे हर क्षण जनमने-मरने देखते हो)। यह एक प्रकार का आत्मवाद ही है। यह कूटस्थ नित्यतत्त्व नहीं है, तो भी परिणामि-नित्यत्व है। आत्मतत्त्व के स्वरूप के सम्बन्ध में ऐसे भिन्न मत हो सकते हैं। ब्रह्मसूत्र ग्रंथ में भी तीन चिन्तकों के तीन भिन्न मत उल्लिखित हैं—(१) प्रतिज्ञा-सिद्धेर्लिङ्ग, आश्मरथ्य.। (२) उत्क्रमिष्यत् एवं भावात्, इति औडुलोमि। (३) अवस्थिते, इति काशकृत्स्नः।

मैं—यह जो आत्मतत्त्व है उसे कूटस्थ नित्य मानने पर भी उसमें ज्ञान-क्रिया तो जरूर रहेगी। अगर वह भी उसमें न रहे तो उसे जड कहना पड़ेगा। उसका वर्णन 'सत् चित् आनंद' किया जाता है।

विनोबा—उसमें क्रिया का अस्तित्व मानने पर उसे अपूर्ण कहना पड़ेगा। किसी भी क्रिया की गुंजाइश उसमें कहां ! 'वह' दुःख जानता है, इसका अर्थ यह है कि 'वह' दुःख से अलग है। इसलिए उसे आनंद-स्वरूप कहते हैं। लेकिन वह आनंद का अनुभव नहीं करता। बर्फी अपना स्वाद नहीं जानती। शंकराचार्य कहते हैं, "जो कहता है कि मैं दुःखी हूं वह यही जाहिर किया करता है कि मैं 'अदुःख' हूं।" नारदभक्ति-सूत्र ठीक नहीं। बर्फी का स्वाद लेने जैसा वह अनुभव नहीं। यदि वह वैसा हो, तो उसे मुक्ति नहीं कहा जा सकेगा।

दावणगेरे की राह पर
२६-११-५७

२६-३० नवम्बर को पड़ाव दावणगेरे में रहा। ३० तारीख को सबेरे चलते हुए चर्चा तो हुई, पर यह कुछ दूसरे प्रकार की थी।

: ६ :

ग्रामदान और 'हम-हमारा'

वरीयान् एष वः प्रश्नः

दावणगेरे से दोड्डुमगलगेरे जाते समय बहुत बडा जनसमूह साथ था। कल कई लडकियों ने लिखित प्रश्न पूछे थे। उनसे विनोबा ने कहा था, "कल सवेरे ग्राना। चलते-चलते तुम्हारे सवालों के जवाब दे दूगा।" बड़े तड़के वे उठकर ग्राई थी। उनके ग्रनेक प्रश्नों में एक बड़ा मार्मिक था। उसने विनोबा को सन्तोष दिया। वह बोले कि इस प्रश्न से यह मालूम हुग्रा कि ग्राजकल लड़के-लड़कियां क्या सोच रहे हैं, उनके विचारो का रुख किस ग्रोर है। इस प्रश्न के लिए उन्होंने उन लडकियों को बधाई दी।

हमारा मंत्र 'जय जगत्'

प्रश्न यह था : ग्राप कहते हैं कि ग्रामदान से 'मैं-मेरा' की भावना जाती रहेगी ग्रौर यह ठीक भी है। लेकिन उसके बदले 'हम-हमारे' भावना ग्रायेगी न, तो क्या फर्क हुग्रा? क्या इससे एक गांव का दूसरे गाव से विरोध नहीं होगा? झगड़ा नही होगा?

विनोबा—प्रश्न बडा मार्मिक है। पर इस प्रकार का विरोध नही होगा, क्योंकि हमारा मन्त्र क्या है? जय जगत्! सर्वोदय हमारा ध्येय है। उसमें सकीर्णता तथा विरोध के लिए गुंजाइश नही। विशालता, उदारता ग्रौर सहकार ही हमारी नीति रहेगी। एक गाव दूसरे को मदद करेगा, उसे भी ग्रागे बढायेगा। 'एकमेकां साह्य करूं, ग्रवघे धरूं सुपंथ।' ग्रर्थात् एक-दूसरे की सहायता करेंगे, सब मिलकर सन्मार्ग ग्रपनायेंगे। यह कहकर सब चलेंगे।

: ७ :

नक्षत्र-दर्शन

स्वाति और मोती

लड़कियों के सब सवालों के जवाब देने के बाद विनोबा ने उन्हें तारकाओं के दर्शन कराये, उनकी जानकारी दी। स्वाति नक्षत्र दिखाकर वह बोले—जब सूर्य इस नक्षत्र में रहता है, तब जो वर्षा होती है, उससे, माना जाता है, मोती तैयार होते हैं। लेकिन यह गलत है। मोती तैयार होते हैं घोंघों से।

स्वाति के पास जो ग्रह है वह गुरु है। ग्रहों में वह सबसे बड़ा है। उसकी अपेक्षा शुक्र तेज में अधिक है। आकाश में वह प्रथम नम्बर का है। वह कभी सुबह, कभी शाम को निकलता है। आकाश के मध्य में वह कभी नहीं दिखाई देता।

सप्तर्षि में भारत-दर्शन

बाद में सप्तर्षि की तरफ मुखातिब होकर बोले—तुमने हिन्दुस्तान का नक्शा देखा है न? देखो ये चार तारकाएं चौकोर बनाती हैं। यह है काश्मीर, और ये तीन तारकाएं नेपाल आदि का हिस्सा है। है न यह हिन्दुस्तान की आकृति?

अरुंधती और छः कृत्तिकाएं

उन तीन तारकाओं में बीच की तारका वसिष्ठ की है। उसके पास एक छोटी तारका है, वह है अरुंधती की। अन्य छः ऋषियों की पत्नियां उनके पास नहीं हैं। यह अरुंधती सदा वसिष्ठ के पास ही रहती है। उन छहों का अंगूरों के गुच्छे के समान गुच्छा दिखाई देता है न? यह है कृत्तिका नक्षत्र।

ध्रुव अचल है

[illegible]

पर ध्रुव से जा मिलती है। वह देखो ध्रुव ! वह हिलता नही, इसलिए उसे ध्रुव कहते है। लेकिन यह तारा दो इंच घूमता है। ध्रुव की कहानी तुम जानती ही हो।

सुबह जल्दी उठो

लडकियों से पूछा—"तुम सुबह कितने बजे उठती हो ?"

"५ बजे।"

"अच्छा, सोती कितने बजे हो ?"

"१०-१०॥ बजे।"

"यानी तुम्हे ६॥ घंटे नीद मिलती है। देर से सोना ठीक नही। नौ बजे सो जाना चाहिए।"

"पढाई पूरी नही होती है।"

"सवेरे और भी जल्दी उठ जाओ। ४ बजे उठ गई तो ७ घंटे नीद मिलेगी। आज तुम्हे ६॥ घंटे नीद मिलती है। सिवा इसके सुबह की पढाई अच्छी होती है। दुनिया के बड़े लेखकों ने अपना लेखन सुबह ही किया है। 'गीताई' सुबह ही लिखी गई है। सुबह जल्दी उठने से बहुत लाभ होते हैं।"

इसके बाद लडकियां विदा की गईं।

दोड्डमंगलगेरे के मार्ग पर
१-१२-५७

: ८ :

डेनियल के प्रश्न

समर्पण-शक्ति

डेनियल—समर्पण-शक्ति बढनी चाहिए। वह कैसे बढेगी ?

विनोबा—समर्पण एक धूर्तता है। थोड़ा देना और सब ले लेना। अपने पास जो कुछ थोड़ा-सा रहता है उसे दे डालने पर सब अपना ही बन

जाता है। बूंद सागर में समा जाने पर स्वयं सागर बन जाती है।

पाप-भीरुता

डेनियल—पाप को कैसे टालें ?

विनोबा—'बोलो जाता बरळ करिसी तें नीट।' अर्थात—'जब हम बेकार बातें बकते हैं तब उन्हें तुम सुधार लेते हो।' ईश्वर का भरोसा इस प्रकार चाहिए। तो भी पाप-भीरु रहना ही मध्यम मार्ग है, जो कि अधिक अच्छा है। पाप-भीरुता बरतने से पाप नहीं रहेगा। करते-करते कर्म इतना स्वाभाविक बन जाता है कि वह कर्म रहता ही नहीं।

शहर में शांति-सेना का संगठन

डेनियल—क्या शहरों में कार्य नहीं होना चाहिए ?

विनोबा—मेरे मन में विचार है कि पूरब में कटक, पश्चिम में बंबई, दक्षिण में बेंगलूर और उत्तर में काशी कार्य के लिए चुने जायं। वास्तव में पूरब में कलकत्ता को ही चुनना चाहिए, पर वहां भक्तिमार्ग का ही प्रचलन रहेगा। युवा लोग तो हिंसा में ही दीक्षित हैं। भक्ति का संगठन नहीं हो सकता। भूदान का कार्य सामाजिक है। काशी में आपका दफ्तर है। वहां सभी भाषाओं के विद्यार्थी रहा करते हैं। बंबई में भी इतनी विविधता नहीं है। ये विद्यार्थी वही भावना लेकर आते हैं। काशी पांच हजार बरस का पुराना नगर है। दिल्ली में तो राज्यकर्ता बस गये हैं। कम-से-कम चार शहरों में शांति-सेना स्थापित करने का मेरा इरादा है। कटक के बारे में मुझे चिंता नहीं। रमादेवी के हाथों यह काम सौंप दिया गया है। कटक में शांतिसेना का संगठन आसान मालूम होता है। बंबई रह जाती है। वहां किसे सौंप दिया जाय ? नारायण देसाई से कहा है, बीच-बीच में इस तरफ ध्यान देने के लिए। बंबई में ५२ तहसील हैं, तो कम-से-कम ५२ कार्यकर्ता चाहिए। आज दस-बारह हैं।

दोड्डमंगलूरे
१-१२-५७

: ६ :

नागरी लिपि और विभिन्न भाषाएं

एक लिपि से लाभ

विनोबा—गुजराती 'गीता-प्रवचन' नागरी लिपि मे छपवाना है। किसीने सदेह प्रकट किया कि इससे उसकी खपत घट जायगी। मैंने कहा—नही-नही, खूब चलेगी। अनेक भाषाओ की एक ही लिपि रहने से बड़ा लाभ होता है। जर्मन भाषा में अठारह दिन में सीख गया, क्योकि उसकी लिपि रोमन है। इतने थोड़े अर्से मे दूसरी कोई भी भाषा में नही सीख पाया।

'गीता-रहस्य' का तमिल अनुवाद

'गीता रहस्य' का प्रकाशन १९१५ में हुआ। उसका तमिल अनुवाद १९५५ मे प्रकाशित हुआ और वह भी बगला अनुवाद से! यूरोप में ऐसा नही होता। किसी महत्वपूर्ण पुस्तक का अनुवाद तुरत ही किया जाता है।

लिपि और शिरोरेखा

गुजराती लिपि मे शिरोरेखा नही लगाते। मैं इसे अच्छा मानता हू। पर हिन्दीवाले बहुसंख्य हैं, उन्हें कौन समझावे। इसलिए मैंने दोनों रखने की तरकीब सोची है। छपाई मे शिरोरेखा रखी जाय। लिखावट उसके बिना रहे।

गुजराती की भाति उड़िया 'गीता-प्रवचन' भी नागरी लिपि में छप रही है।

... ...

पंपा याने हंपी

यह बेल्लारी जिला है। इसमें पपा नाम के सरोवर हैं। भगवान् राम वहा पधारे थे। 'पंपा' से 'हपी' परिणत हुआ है। गुजराती मे जिस प्रकार 'स' का 'ह' बनता है, 'सवारे' को 'हवारे' कहते हैं, उसी प्रकार इधर भी मे 'प' का 'ह' हो जाता है। 'पपा' से 'हपा' और बाद मे 'हपी'।

इस जिले में हमने प्रवेश किया है। यह है हनुमान् का जिला, सबेरे यहां के लोगों ने बताया है।

दोड्डमंगलमेरे
१-१२-५७

: १० :

न किंचिदपि चिन्तयेत्

राम—'न किंचिदपि चिन्तयेत्', बिल्कुल चिन्तन न करते हुए चुप रहने की स्थिति का अनुभव कैसे किया जायगा ? कितनी देर तक इस अवस्था में रहा जाय ?

विनोबा—यह स्थिति कितनी देर तक रहे ? 'बिल्कुल चिन्तन न करें' यह निर्देश दिनभर के लिए नहीं दिया गया है। चाहे जब मन को निर्विचार करना संभव हो। गाढ़ी नींद में मिलनेवाला सुख प्राप्त होना चाहिए। निद्रा में जो सुख मिलता है उसे अगर न पाया जाय तो काम बनेगा नहीं। उसमें प्रभूत शक्ति प्राप्त होती है। निद्रा से वह मिलती है। उससे अधिक समाधि से प्राप्त होती है।

१९१८ में मैं बहुत ही क्षीण होगया था। इसके कारण पौनार जाकर रहा। जाते-जाते पुल पर ही निश्चय किया कि सारी चिन्ता त्याग दी। वहां एक-एक घंटा शून्य मनोवस्था में लेटा रहता था। दो-चार किताबें केवल साथ ली थीं। विचाररहित मन, योग्य आहार-विहार और व्यायाम—यह रहा वहां का कार्य-क्रम। फल यह हुआ कि हर महीने चार पौंड वजन बढ़ता गया। इस प्रकार ३६ पौंड वजन बढ़ गया। जो खाता, हजम हो जाता, क्योंकि विचार तो कुछ भी था नहीं, और विचार भी पास फटकता नहीं था। 'न किंचिदपि चिन्तयेत्' के कारण स्वाधीन रहा। जिसके पास २५ एकड़ जमीन होती है, वह भी उसकी चिन्ता से परेशान हो उसका गुलाम बन जाता है। लेकिन आदमी अपने मन को निर्विचार, चिन्ताशून्य कर सकता है, तब वह स्वाधीन बनता है। 'जब चाहो तब खोलो किवाड़' इस स्व

की स्वाधीनता मिलती है। सब बातो से, सब विचारो से अपनेको अलग करने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। जब यह शक्ति आत्मसात् हो जाती है तब मनुष्य अपने मूल रूप को पहुंच जाता है। नीद मे भी वैसा होता है, पर तब अज्ञान रहता है। मूल रूप को पहुंच जाने पर शक्ति की कमी नही। निंदा-स्तुति आदि द्वंद्वों के आघातो का असर नहीं होता। वहां से अटूट धैर्य मिलता है। उसमे चौबीस घंटे रहने की बात नही उठती। जब उस स्थिति मे पैंठना हो तब पैंठा जा सके।

कलचोकेरी
२-१२-५७

: ११ :
पुरानी स्मृतियां

दाल में दुगुना नमक

विनोवा—मा स्तोत्र पाठ करते हुए या भजन गुनगुनाते हुए रसोई पकाती थी। कभी-कभी दाल मे नमक दिया या नहीं, इसकी उसे सुधि नही रहती थी। फिर वह नमक डाल देती। पहले नमक नहीं दिया, इस धारणा से फिर उतना नमक मिला देती जितना कि पहले देना होता था। इससे दाल में ज्यादा नमक पड़ता। मुझे कॉलेज जाना होता था, इसलिए मैं पहले खाने बैठता। पिताजी बाद मे खाते। लेकिन उस समय अन्याय विषयों के अध्ययन में मैं इतना मशगूल रहा करता कि दाल में बिल्कुल नमक नही पड़ा या दुगुना पड़ गया, इसका भान मुझे नही होता था। भोजन खतम करके मैं चला जाता। बाद में जब पिताजी खाने बैठते तब मां से कहते, कितना नमक डाला है दाल मे ? सब लोगों के भोजन के उपरात मा भोजन करती। उसे और लोगों की तुलना मे ज्यादा नमक लगता। पर वह दाल दुगुनी नमकीन देखकर उसे दुख होता। उसे लगता—'कितना नमकीन कर दिया मैंने इस दाल को !' जब मैं कॉलेज से घर लौट आता तब वह मुझसे पूछती—'विन्या, दाल मे

[illegible], मुझे [illegible] —'मुझे [illegible]'

...

हमारा शाम का टहलना

शाम को हम टहलने जाते। [illegible] बैठकर सूर्यास्त देखते। सूर्यबिंब नीचे डूब जाता। [illegible] पक्षियों की चहचहाहट बंद हो जाती। [illegible] देती थी। फिर पहले एक सितारा दीख पड़ता, बाद में और सारे दिखाई देने लगते। आठ बज जाते। तब हम लौट पड़ते। घर आते-आते ८॥ बज जाते। मां आटा गोंदती रहती और हम भोजन कर चुकते।

अंग्रेजी निबंध

एक बार हमारे अध्यापक ने—'विवाह-विधि का वर्णन (A description of a marriage ceremony)' पर अंग्रेजी में निबंध लिखने को कहा। पर चूंकि मैं कभी शादी-ब्याह में नहीं गया था, उसकी विधि कैसे जानता। पर निबंध लिख दिया। एक युवक ने ब्याह किया। उससे वह कैसे दुखी हुआ तथा औरों को भी उसने कैसे दुखी किया इसका एक काल्पनिक चित्र मैंने खींचा। शिक्षक ने लिखा—'यद्यपि सवाल का जवाब इसमें नहीं, तो भी प्रतिभा की चमक दीखती है।' १० में से ७ अंक दिये।

साले के कारण बाल-बाल बचा

मोघेजी घर छोड़कर मेरे पास आश्रम में आये, इसलिए उनके पिताजी मुझपर बहुत रुष्ट थे। वह कहते—'विनोबा ने उसे 'किडनप' किया (भगाया) है। उन्हें मैंने एक पत्र लिखा। उसमें लिखा था कि अदालत में यह साबित नहीं हो सकेगा कि मैंने उन्हें भगाया। वह उम्र में मुझसे पांच साल बड़े थे। उन्हें मैं 'किडनप' कैसे करता? उम्र में बड़ा व्यक्ति अगर स्त्री हो तो माना जा सकेगा कि उस स्त्री को वह पुरुष किडनैप करेगा। पर प्रस्तुत उदाहरण में

वह भी बात नही। इसलिए आप मुझपर यह इलजाम नहीं लगा सकते। लेकिन उनका गुस्सा बना ही रहा। मोघेजी पर नही जाते थे। उन्होंने पिताजी को लिखा कि वह एक बार आकर आश्रम देख लें। उस समय आज की बजाजवाड़ी मे धाम के बंगले में हम रहते थे। जब वह आये तब हम 'पाजण' कर रहे थे। उन्होंने अपनी लाठी जोर से ताने पर दे मारी। सैकड़ों तार टूट गये। मैं ताने के दूसरे छोर पर था। वह मेरी ओर आये। पर मुझपर गुस्सा नही उतारा। कुछ बोले ही नही। वह अपना गुस्सा ताने पर उतार चुके थे। शाम.को मोघेजी मेरे पास आये और बोले—अच्छा ही हुआ कि तार टूट गये। अगर आप पहले मिलते तो उनकी लाठी आपके सिर पर बरस पड़ती।

... ...

जेल मे मेरा दु ख

हम थे सिवनी जेल मे। मैंने इन्कार किया था नातेदारों और अन्यों मे फर्क करने का। इस वजह से मै किसीको भी पत्र नही भेजता था। तीन साल गुजर चुके थे। हमेशा आनद में रहता। एक दिन मालूम नही क्या सोचकर जेलर मेरे पास आकर बड़ी देर तक बैठा रहा और बोला, "क्या आपके जीवन मे एक भी दुःख नहीं ?" मैं बोला, "है, क्यों नही ? पर वह क्या है, आप ही पहचानिये। सात दिन की मुहलत देता हू।" वह एक हफ्ते के बाद आया और बोला, "मुझे तो कोई दुःख नही दीख पड़ता। आप ही बताइये न।" मैंने कहा, "यहा जेल में सूर्योदय तथा सूर्यास्त नहीं नजर आते। यही मेरा दुःख है।"

कलचोकेरी
२-१२-५७

: १२ :

मेरा ध्यान और ब्रह्मचर्य का स्वरूप

मैं—आप कहते हैं कि हर रोज अंतरात्मा के मंगल गुणों—सत्य, प्रेम,

रुणा आदि का ध्यान किया जाय। हम जानना चाहते हैं कि आप यह ध्यान किस प्रकार करते हैं?

विनोबा—मैं मौन धारण करता हूं। किसी भी प्रकार का चिंतन नहीं करता। उस शांति में से सत्य, प्रेम, करुणा आप-ही-आप उमड़ आते हैं। सब मंगल गुणों में इन्हीं तीन गुणों को मैं श्रेष्ठ मानता हूं। ब्रह्मचर्य, निर्भयता, अहिंसा आदि गुण इन्हींमें अंतर्भुक्त हैं।

ब्रह्मचर्य करुणामूलक

ब्रह्मचर्य के मानी कठोर संयम, कठोर अनुशासन है, तो उसका अंतर्भाव करुणा में कैसे? लेकिन मैं उसे करुणामूलक ही मानता हूं। जो सहज ब्रह्मचारी हैं, वे सब करुणा-प्रधान हैं। अन्य कारणों से भी ब्रह्मचर्य साधना करनेवाले हैं। कोई अध्ययन के लिए, कोई पितृवचन पालन के हेतु, कोई देश-सेवा के वास्ते कठोर अनुशासन में रहकर ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं। वे सब बड़े और आदरणीय हैं। लेकिन मैं तो ब्रह्मचर्य को करुणामूलक मानता हूं। जब मैं पवनार में रहता था, उन दिनों एक बार जमनालालजी मेरे पास आये और बोले, "चलिये, लक्ष्मीनारायण मंदिर में कृष्णजन्म देखने चलें।" मैं वहां गया। देवकी लेटी हुई थी। उसका पेट फूला हुआ था। सांस लेने में तकलीफ होती थी। वह वेदनाएं अनुभव कर रही थी। यह सब बड़ी खूबी से उस गुड़िया में प्रदर्शित किया गया था। पर उसे देखकर मुझे यकीन हुआ कि देव अजन्मा है। जन्म लेकर वह ऐसा दुःख अपनी माता को क्यों देने लगा? मैं पवनार लौट आया और आश्रम में आने पर गीता का चौथा अध्याय पढ़ गया

> अजोऽपि सन् अव्ययात्मा भूतानां ईश्वरोऽपि सन्।
> प्रकृतिं स्वां अधिष्ठाय संभवाम्यात्म-मायया॥

यह श्लोक उस अध्याय में है। वह अजन्मा है। जनन जैसी दुःखदायी क्रिया वह क्यों कर करेगा? माता को भी दुःख और बालक के लिए भी दुःख-ही-दुःख। इसलिए ब्रह्मचर्य की प्रेरणा करुणा में है। मुझे लोग कठोर मानते हैं और उसमें तथ्य भी है। उनका वह अनुभव सही है। कहते हैं कि अब मैं जरा बदल गया हूं। लेकिन वास्तव में पहले से ही मैं करुणा से भरा

हुआ हू। अपने जैसा करुणापूर्ण व्यक्ति मैंने और नहीं देखा। मैं घर पर था। मेरे दोस्त चाय पीते और अन्य बातें भी करते। उनपर मैंने कठोर प्रहार किये हैं। पर उन्होंने चाय नहीं त्यागी। फिर भी मैंने उनका त्याग नहीं किया और वे मुझसे इतना प्यार करते हैं कि वे अपनी पत्नी, मां, बाप, नातेदारों का त्याग कर मेरे पास रहे हैं। मेरे भाइयों की भी वही कथा है। मेरे साबरमती जाने पर घर पर उनसे नहीं रहा गया। घर पर सब बातों की अनुकूलता रही। इसके बावजूद वे मेरे पास आये। उसका कारण है मेरी करुणाशीलता। गृहस्थी करनेवाले को दुनिया दयालु, कृपालु मानती है और ब्रह्मचारियों को कठोर। ज्ञानदेव ने भी ब्रह्मचर्यादि साधनों को कठोर बताया है 'ब्रह्मचर्यादि साधनें खरपूसें', फिर भी मैं मानता हूं कि ब्रह्मचर्य करुणामय है। अनुभव के बल पर कहता हूं।

बुद्ध को करुणासिंधु कहा गया है। शंकराचार्य की भी प्रशंसा 'करुणालय' कहकर की है—'श्रुति-स्मृति-पुराणानां आलयं करुणालयम्। नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।' बुद्ध ने भी कहा है—"को नु हासो किमानंदो निच्चं पज्जलिते सति।" यह सब मैंने पढ़ा बहुत बाद में, पर बचपन मे ही यह बात मुझे हृदयगम हो गई थी। रात को दरवाजे के सामने से बारातें जाया करती थी। तब बैंड की ध्वनि सुनाई देती और मैं नींद से जाग पड़ता। मुझे वह बारात श्मशान-यात्रा के जैसी लगती। क्या मैं नहीं जानता था कि वे बारातें हैं? तो भी वे अत्ययात्रा-सी लगती थी।

अरसीकेरी
३-१२-५७

: १३ :

सूर्योपस्थान

इधर दस-पन्द्रह दिन हुए सूर्योपस्थान हुआ करता है। सवेरे ५ बजे पद-यात्रा शुरू होती है। सूर्योदय के समय विनोबाजी खेत में सूर्याभिमुख होकर खड़े हो जाते हैं और—

सत्येन लभ्यस् तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥१॥
सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामाः
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥२॥

ये दो श्लोक कहकर सूर्य-बिंब के ऊपर आने तक ध्यानस्थ रहते हैं। उसके अनन्तर—

पूर्णं अदः पूर्णं इदं। पूर्णात् पूर्णं उद् अच्यते।
पूर्णस्य पूर्णं आदाय। पूर्णं एव अवशिष्यते॥

इस शान्तिमन्त्र के पठन से उपस्थान सम्पन्न होता है।

पहले मार्ग में पाठ पढ़ाया करते थे। अब यह सूर्योपस्थान हुआ करता है।

यह उपस्थान सूर्य का नहीं है। जिसने सूर्यचन्द्रादि का निर्माण किया उस परमेश्वर का है। परम सत्य का उपस्थान है। भूलना नहीं चाहिए कि सूर्य उसका प्रतीक है।

"उद् वयं तमसः परि, ज्योतिः पश्यन्त उत्तर, (स्वः पश्यन्त उत्तर) देव देवत्रा सूर्यं अगन्म, ज्योतिर् उत्तम इति॥"

आरसीकेरी
३-१२-५७

: १४ :

भूदान की कहानी

प्रायः संध्या के प्रवचन के बाद विनोबा के साथ हम लोग घूमने जाते

हैं। ग्राज भी गये थे। रास्ते के पास के खेत में रास्ते से दूर विनोबा बैठ गये और उनके इर्द-गिर्द हम भी।

पीछे पड़ना चाहिए

कांतिभाई बोले, "आपका व्याख्यान सुनकर लोगों के दिल में भावनाएं उमड़ पड़ती हैं। उनसे लाभ उठाना होगा। इसलिए आपके जाने के बाद तुरत लोगों के पास जाकर दान-पत्र भरवा लेने चाहिए, इससे बहुत काम हो जायगा। जिस प्रकार आपकी अगाड़ी की टोली होती है, वैसी ही एक पिछाड़ी की भी चाहिए। बंबई में जयप्रकाशजी के भाषण के बाद लोगों में भावना की जागृति होती थी और दूसरे दिन उनके पास पहुचने पर वे दानपत्र भर देते थे। अगर हम व्याख्यान के दस-पंद्रह दिन बाद गये, तो काम नही बनता। यहा भी यही करना चाहिए।

उत्तर प्रदेश में पहले चुनाव के समय

विनोबा—पर आदमी कहा है काम के लिए? यहां मेरे साथ लोग है, यही बहुत समझो, आगे और पीछे के कार्यकर्ताओं की बात तो दूर ही है। उत्तर प्रदेश मे प्रथम चुनाव के दिनों मे मैं घूमता था। सब लोग इसी काम मे लगे हुए थे। उस वक्त भूदान की सभा अकेले विनोबा की ही भारतभर मे हुआ करती थी। आगे-पीछे जानेवालों की बात ही क्या, साथ में भी कोई नही था। मेरे साथ करणभाई थे। उन्होने तो इस क्रांति-कार्य मे ही रहने का निश्चय किया था। खुद उनको चुनाव के लिए खड़ा नही रहना था; लेकिन कृपालानीजी के लिए प्रचार करना उनके जिम्मे आ गया था। गुरु का इतना ऋण तो मान ही लेना चाहिए न? उन्होने पन्द्रह दिन की रुखसत चाही और मैंने उन्हें दे दी। कोई साथी नही था, मैं अकेला ही घूम रहा था। तो भी स्वागत के लिए तथा सभा में लोग इकट्ठे होते थे। पर काम कहने लायक नही हो रहा था। ऐसी हालत मे दो मुसलमान भाई मेरे पास आये। वे या तो भाई-भाई थे, या एक-दूसरे के रिश्तेदार थे। उनके साथ भूदान और कुरान के बारे में खुले दिल से चर्चा हुई। उन्होने अपनी ११ हजार एकड़ भूमि दान में देने का इरादा जाहिर किया। उस आम चुनाव के समय में यह खबर अख-

र मे छली। लोगों को उसके बारे मे भानद भाश्चर्य लगा। इसमे अचरज
क्या था ? लेकिन धर्मराज की भांति, जिनके साथ मे एक कुत्ता था, मेरे
ोई साथी न था। दानपत्र भी बडी तादाद में नहीं मिल रहे थे। यह
ल्दति उसके पहले और बाद भी अनेक बार महसूस करनी पडी।

प्रथम षष्ठांश दान

इसी बीच मेरी ओर नमिलनाड के जगन्नाथन् आये थे। उन्होंने पत्र
लिखकर पूछा था—"क्या मैं आ जाऊं ?" मैंने उन्हें आने को लिखा था,
जिसके अनुसार वह आये थे। वह मेरे साथ चार-छः महीने रहे। उस वक्त
मुझे कभी १० एकड, कभी १२ इस प्रकार जमीन मिलती थी। वह सब
कुछ देख रहे थे। एक दिन जमीन दान मे मिलने के कोई आसार नजर
नहीं आ रहे थे। मेरे पास बैठे हुए एक आदमी से मैने पूछा, "तुम्ही क्यो
नही देते जमीन ? कितनी है तुम्हारे पास ?" वह बोला, "एक एकड। उसमे
से आपको क्या दे दू ? मेरे पांच लडके हैं।" मैं बोला, "समझो तुम्हारे छठा
लडका भी है। उसे तुम खिलाओगे या नही ? मुझे ही वह छठा लडका
मानकर छठा हिस्सा दे दो। उसने मान लिया और दो गट्ठा जमीन दे दी।
यही थी एक गरीब किसान से प्राप्त पहली जमीन। इस प्रकार उस दिन
फाका टल गया। अन्य बडे-बडे किसान तथा जमीदार दूर खड़े थे। वे देखते
ही रह गये।

तेलंगाना में

शुरू-शुरू मे तेलगाना मे भी इसी प्रकार १०-१२ एकड जमीन हर
रोज मिल जाया करती। कोई साथी नहीं था। तीनसौ लोग क़त्ल किय गए
थे। उस प्रदेश मे कौन देगा साथ ? पर उस समय मैं आठ-आठ घंटे काम
करता रहता, आज की तरह पडाव पहुंचने पर अपने कमरे मे नही बैठा
करता था। इसी कारण तेलगाना मे १८ हजार एकड जमीन मिल गई।

विनोबा की अदालत

मैं बोला—तेलगाना मे अपने न्यायदान का काम किया, जो कि एक

खास बात-सी मुझे प्रतीत होती है। अन्यत्र कहीं वैसा नहीं हुआ।

विनोबा—दोनों पक्षों को सामने बुलाकर मैं कहा करता कि विनोबा की कोर्ट में दूसरे का अपराध कहना नहीं होता, केवल अपना किया हुआ कहना होता है। तब हरएक अपना अपराध कबूल किया करता। पर बीच ही मे अगर कोई कहता कि 'उसने ऐसा किया,' मैं झट उसे टोक देता। और फिर उसमे कुछ कम-ज्यादा करके फैसला किया करता। सरकारी अधिकारी उसे लिख लेते और उसके अनुसार कागजात तैयार कर लेते। इस प्रकार हमारी अदालत काम करती।

बड़ी संख्या का जादू

बाद में उत्तर प्रदेश से बिहार में दाखिल हुआ। उत्तरप्रदेश में ५ लाख एकड भूमि मिल गई थी। बिहार मे प्रवेश करने से पहले मैंने कहा था कि बिहार में चार लाख एकड जमीन मिलनी चाहिए। बिहार के लोगों ने बताया कि बिहार मे उत्तर प्रदेश की अपेक्षा जमीन कम है, यह मांग घटानी होगी। मैंने कहा—मांग हरगिज कम नही होगी, नही तो विध्यप्रदेश की पदयात्रा का सकल्प तय हो रहा है, उधर ही चल निकलेगे। तब बिहारी लोगो ने सोचा—उन्हे आने तो दीजिये, मिल ही जायगी कई लाख एकड जमीन। और इस विचार से मांग कबूल की। हम बिहार में प्रवेश कर गये। बुद्ध-जयती के दिन जब राका के महाराजा ने पूछा—"कितनी है आपकी माग," तब मैंने कहा—परती जमीन सब और उपजाऊ जमीन का छठा हिस्सा दीजिये। उसके अनुसार उन्होने परती जमीन एक लाख एकड तथा उपजाऊ उत्तम जमीन का छठा हिस्सा याने २ हजार एकड़ दान में दे दी। तब मैंने घोषित किया कि बिहार में मुझे ५० लाख एकड जमीन मिलनी चाहिए। लोगों के कहने से घटाकर वह माग ४० लाख एकड़ कर दी। बाद में वैजनाथबाबू आये। उन्होने जिलावार आंकड़े बताकर कहा कि यह मांग ज्यादा है। तब हिसाब करके ३२ लाख की माग निश्चित की। लेकिन बिहार की २७ महीने की पदयात्रा मे २२ लाख एकड जमीन मिली। बड़ी संख्या का यह जादू है। मैं बात करता था ५० लाख की, कार्यकर्ता लोग भी बड़ी संख्या की माग पेश किया करते। इसीका परिणाम यह हुआ

कि बिहार में २२ लाख एकड भूमि—सबसे अधिक भूमि—प्राप्त हुई। ३२ लाख का सकल्प अधूरा रह गया, और मैं अब बिहार छोड़ने को था। इसका वहा के लोगों को बड़ा रज हुआ। लेकिन उसके लिए मुझे बिहार में ही रोक रखना कार्य में अड़गा डालने जैसा होता। इसलिए बाकी संकल्प पूरा करने तथा प्राप्त २२ लाख एकड का बंटवारा करने की जिम्मेदारी जयप्रकाशजी ने अपने ऊपर ले ली और मुझे मुक्त किया।

उड़ीसा में एक हजार ग्राम-दान

बिहार से बगाल होकर मैं उडीसा मे प्रविष्ट हुआ। वहां सैकड़ों ग्रामदान पहले ही मिल गये थे, तो भी गजम जिले मे प्रवेश करने के समय तक काम बताने लायक नहीं हो रहा था। नवबाबू, गोपबाबू, रमादेवी, मालतीदेवी जैसे लोग कष्ट उठा रहे थे। लेकिन कौन जाने क्या हुआ, मेरे प्रवेश के बाद काम आगे बढ नहीं रहा था। गजम में काम फिर से बढने लगा और कोरापुट में तो एक हजार ग्रामदान मिले।

तामिलनाड मे कार्य असभव नही

इन ग्रामदानों की कहानी जब जगन्नाथन् के कानों तक पहुची, तब उसने मुझे पत्र लिखा कि यहा तामिलनाड में ग्रामदान मिलना बिल्कुल असभव है। पहले जब गगा-किनारे की सुदर जमीन मिली तब वह बोला था कि तामिलनाड में कावेरी-किनारे की जमीन, जो गगातीरस्थ भूमि की भाति ४ हजार से लेकर ७ हजार तक फी एकड मूल्यवाली है, मिलना सभव नहीं। अब वह ग्रामदान असभव बताता था। मैंने उसे लिखा—तामिलनाड में ग्रामदान अवश्य मिलेंगे। इसके कारण हैं दो . (१) सपूर्ण तमिल साहित्य में जमीन की मालकियत नाम की वस्तु नही पाई जाती, और (२) सब गाव मदुरै की भाति मंदिर के चारों ओर बस गया है, जैसे इधर वह बाजार के चारो ओर बस गया है। मदिर को केन्द्र बनाया गया है, इसका अर्थ है देवता ही ग्राम का स्वामी है। सारा गाव, सारी जमीन उसकी है। वह राजाजी के पास गया था, अपने भूदान-कार्य में आशीर्वाद मागने। पर उन्होंने कहा—तामिलनाड में भूमि मिलना, कावेरी

किनारे की उपजाऊ भूमि मिलना, मुझे असंभव-सा लगता है। उत्तर की बात ही अलग है। उधर बाबा का रौब जम गया है, पर इधर आबादी घनी होने के कारण काम नहीं बनेगा। वह गया था असीस मांगने, उसे यह असीस मिला!

तामिलनाड की चट्टान

आंध्र होकर मैं तामिलनाड गया, पर वहां शुरू के आठ-नौ महीने कुछ फल नजर नहीं आया। कोयम्बटूर सेलम में तो हद होगई। मेरी यात्रा दिन में दो बार हुआ करती। व्याख्यान बहुत हुआ करते। लोग कहते, आपके ये व्याख्यान देहाती लोग समझ नहीं सकते। किनके लिए आप व्याख्यान दे रहे हैं? मैं कहता—ये अखिल भारत के लिए हैं। कुरल, माणिक्यवाचकर आदि लेखकों का अध्ययन मैंने जारी रखा था। उनके वचन, उनकी सूक्तियां उद्धृत करके मैं व्याख्यान देता था। लेकिन कोई फल हाथ नहीं लगता था। सेलम तो राजाजी का जिला, नाम के अनुसार चट्टान, सूखा पत्थर ही ठहरा। उसके बाद इतने दिनों की तपस्या फलरूप होगई। मदुराई जिले में गांधीग्राम में हम ठहरे थे। जी. रामचन्द्रन् और मंडली के सामने मैं एक बार बोला, "मैंने तीस-तीस साल रचनात्मक कार्य किया, बैठे-बैठे। आप भी रचनात्मक कार्य अपनी संस्था में कर रहे हैं। मुझे बताइये कि यह जो मैं घुमक्कड़ी करके प्रचार कर रहा हूं, उसे बंद कर दूं या जारी रखूं? आपके कहे अनुसार करूंगा।" इसका असर उनपर पड़ा और प्रार्थना के बाद जी. रामचन्द्रन् ने मेरे पास चिट्ठी भेजी—आपका भूदान-कार्य ही योग्य है। हृदय को तो वह कबका छू गया है, लेकिन बुद्धि नहीं मान रही थी। अब मैं उसे मान गया हूं और हम यह कार्य आगे बढ़ायंगे।

केरल में ढाईसौ ग्रामदान

इसके बाद केरल में प्रवेश किया, पर वहां भी पालघाट पहुंचने तक कोई काम कहने योग्य नहीं हुआ। केरल में बैठते ही मैंने पूरे केरल के दान की बात कह दी। लोग कहते—कम्यूनिस्ट शासन है, यहां बाबा की

दाल नहीं गलेगी। गुरू में वही आसार नजर आये। लेकिन बाद में परिवर्तन हुआ। केरल में भी ढाईसौ ग्रामदान प्राप्त हुए।

कर्नाटक का नाटक

उसके अनन्तर यात्रा कर्नाटक में आई है। यहां कार्यकर्ताओं का अभाव है। कुछ भी काम नहीं होता। धारवाड तक इन्तजार करूंगा। उसके बाद अगर काम में जोश आ गया तो ठीक, नहीं तो तेलगाना के समान खुद ही कमर कस लेने की सोच रहा हूं। यहां बेंगलूर में आश्रम की स्थापना करनी है। यहां का काम जबतक ठीक नहीं होगा, दक्षिण छोड़ जाने का नाम नहीं लूंगा। इसीको हमारा कादरन् समझिये।

: १४ :

संस्कृत भाषा और गीतोपनिषद्-पाठ

मैं—विनोबाजी, शाम को जो स्थितप्रज्ञ-विषयक श्लोक बोले जाते हैं उनमें 'आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्' बोला जाता है, उसके बदले 'आपूर्यमाणं अचल प्रतिष्ठम्' ऐसा पदच्छेद करके बोला जाय। इससे छंद भी सुरूप होगा और अर्थबोध भी सुगम होगा।

दूसरी बात, प्रातःकाल हम जो ईशोपनिषद् का पाठ करते हैं उसमें न पद-पाठ पूर्णतया रहता है न वाक्य-पाठ। इसके बारे में कुछ व्याख्या चाहिए।

धातूपसर्गों का विलगीकरण

उपसर्गों को तोड़कर पढ़ने का तरीका जो आपने अपनाया है, वह उन्हें विशेष महत्त्व देने की दृष्टि से उचित ही है। हां, उसके कारण छंद गायब हो जाता है। पर जब छंदोबद्ध रचना को गद्यवत् बोला जाता है तब ऐसा करने में बाधा न रहे।

गद्य गेय, पद्य पाठ्य

मराठी ईशोपनिषद् गद्य होते हुए भी पद्यवत् बोला जाता है, और पूरा संस्कृत छन्दोबद्ध होते हुए भी गद्यवत् बोला जाता है, यह बड़ी मजेदार बात है भाषा की।

विनोबा—स्थितप्रज्ञ-विषयक संस्कृत श्लोक चरणशः बोलना हो तो एक चरण दूसरे चरण से अलग ही बोला जाय, संधि न की जाय। परन्तु चरणान्तर्गत बदल करने से अनवस्थाप्रसंग आ पड़ेगा। कोई भी कैसा भी बोलेगा और किन्हीं दो के पठन में मेल नहीं रहेगा।

विवक्षा-पाठ

मैं—यह नहीं होगा। एक विवक्षा-पाठ बनाकर वही सब बोलेंगे। यह हो सकता है। उससे छंद शुद्ध होगा और अर्थबोध भी सुलभ!

पद-पाठ भाष्य का ही एक तरीका

विनोबा—लेकिन यह करने से संहिता खंडित होगी। पद-पाठ के मानी भी संहिता का भाष्य करना है। पदच्छेद का ढंग कौन तय करेगा? वेद का जो पद-पाठ है, उसे मानना ही चाहिए, सो बात नहीं। वह ऋषिदृष्ट नहीं। संहिता ऋषिदृष्ट है।

वेद संहिता नहीं, अक्षरराशि

मैं—वेद केवल संहिता नहीं, वह अक्षरराशि है। अक्षरों का समुच्चय। प्रत्येक अक्षर स्वतन्त्र है। पद और अर्थ की झंझट ही नहीं।

विनोबा—जिस समय वेदमन्त्रों की रक्षा ही एकमेव सर्वोपरि कर्तव्य था तबका वह विचार है।

मैं—लेकिन विचार सर्वकालीन नहीं हो सकता। पद-पाठ, निघण्टु, निरुक्त, व्याकरण, भाष्य आदि प्रपंच से यह स्पष्ट है कि वह सर्वकालीन नहीं है। इसलिए पुराने जमाने का विचार चाहे कुछ भी क्यों न हो, आज की जरूरत के मुताबिक उसे तराशना ही चाहिए, ताकि उसकी चमक

ऊपर उठे। जो मानते है, पुरानी चीजे ज्यो-की-त्यो बनी रहे, उनके लिए कठिन है ही।

पद-पाठ और विवक्षा-पाठ का महत्त्व : एक उदाहरण

पद-पाठ मात्र का ही एक तरीका है, आपका यह कहना मुझे मान्य है, क्योकि उसमें प्रसगों का पद-विच्छेद भिन्न-भिन्न हो सकता है। यह पद-विच्छेद हमेशा के अर्थनिश्चय पर निर्भर करता है। 'स मेनेन वदिष्ये' उपनिषद्-वचन का यह पुराना पद-पाठ जिसमेजो ने 'सं एनेन वदिष्ये' ऐसा माना है, जो कि शकराचार्य के और परपरागत पाठ से भिन्न है। पर कोई भी स्वीकार करेगा कि वह अधिक समर्पक है।

इसमे 'स' उपसर्ग पद धातु से दूर पड गया है। इस उपनिषद् वचन का वैदिक भाषा मे होना इससे सिद्ध है। वेद में उपसर्ग सर्वदा अलग आते है, इसलिए आपने उपसर्ग अलग करके उच्चारण करने का जो ढग अपनाया है, उसे इससे और भी बल मिलता है।

विनोबा—तुम जो विवक्षा कहते हो, वह किसकी विवक्षा ? ग्रथकर्ता की या पाठक की ? ग्रथकर्ता की विवक्षा हम कैसे जान पायेगे ?

मैं—विवक्षा वक्ता की होती है। पर मूल वक्ता ग्रथकार ही रहता है। इसलिए उसकी विवक्षा, जैसी मैं समझ सकता हू, रहेगी। इसके मानी यह कि ग्रथकार और पाठक में भेद का कोई कारण ही नही।

सुसंस्कृत

विनोबा—संस्कृत का सधिप्रकरण बडा झटखट है। इसके कारण संस्कृत मे बिना कारण के जटिलता आ गई है। इसीलिए मैने सीधे पद-पाठ करना शुरू किया है।

मैं—आपने सब पदो को तथा उपसर्गों को भी अलग करने तक आगे कूच किया है, तो मेरा बताया हुआ विवक्षा-पाठ आप मान्य करेंगे। ऐसी संस्कृत को मैं सुसंस्कृत मानता हू।

विनोबा—ठीक, सुसंस्कृत याने सुलभ संस्कृत।

संस्कृत की अमरता का रहस्य

मैं—संस्कृत को देवभाषा क्यो कहते है, इस बात का विचार करते

हुए मेरे ध्यान मे एक बात आई है। संस्कृत की उच्चारण-पद्धति स्पष्ट, पूर्ण तथा समान है, इसीलिए वह दस हजार वर्ष तक जी सकी है। आगे चलकर भी वह इसी प्रकार जी जायगी। प्राकृत भाषाओं में यह गुण नहीं है, जिसके कारण उनमें वेग से स्थित्यंतर होते गये और अन्त मे वे नष्ट हो गई। हमारी प्रादेशिक भाषाओं में जो ये परिवर्तन होते गये और हो रहे है उनके कारण उन्हे मर्त्य भाषाएं कहना पडता है।

'अगरखा' शब्द वास्तव मे 'अग+रखा' है, पर अधूरे उच्चारण के कारण जिसमे 'ग' के बदले 'र' अधूरा बोला जाता है, वह आज अंगर+खा जैसा बोला जाता है। इसमे शब्द मे विकृति आती है और अर्थव्युत्पत्ति दुर्बोध बन जाती है। ऐसा भी भ्रम हो सकता है कि यह समरखा, अमरखा जैसे किसी मुसलमान का नाम है।

विनोबा—सस्कृत की ही भांति द्रविड भाषाओं में भी पूर्ण उच्चारण किया जाता है, जैसे नागपुर। इस शब्द का उच्चारण हम 'नागपुर्' करेंगे। इस उच्चारण मे वे उसे समझ नहीं सकते, वे फिर से 'नागपूरा' जैसा उच्चारण करके निश्चिति कर लेते है। 'अ' का उच्चारण वे जरा लबा—दीर्घ नहीं—करते है।

द्रविड़ भाषाओं ने इस गुण के साथ एक अवगुण—सन्धि—भी अपना लिया है। द्रविड़ भाषाओं के अध्ययन में वह बहुत बड़ी रुकावट है। अब एक तमिळ आगम ग्रन्थ सन्धियों को अलग करके पदपाठमय छप गया है।

सुलभ संस्कृत

सन्धि-नियमों की जटिलता के कारण सस्कृत पिछड गई। प्राकृतें आगे बढी। बापूजी कहा करते थे—सस्कृत आध्यात्मिक भाषा है। लोग अत्यधिक व्यवहारी बने, जिसके कारण वह भाषा लुप्त-सी हो गई। पर आम जनता के लिए सरल सस्कृत भाषा तैयार करना सम्भव है। सब शब्द सस्कृत के और प्रत्यय हिन्दी के, इस ढंग से भाषा बनाई जाय, तो वह आम फहम हो सकेगी।

घनश्यामसिंह गुप्त जेल मे हमारे साथ थे। वह कताई के वक्त '५ मिनट शेष' कहकर सूचना दे देते थे। पहले-पहल लोग उनके 'शेष' शब्द पर टीका-

पणी करते थे, पर अनेक महीनों के अभ्यास के कारण वह शब्द वहां बन गया, इतना कि उसमें कुछ विचित्रता का अनुभव नहीं होता था।

मैं—एसपरान्तो ऐसी ही एक आसान भाषा बनाई गई है।

विनोबा—पर वह यूरोपीय भाषाओं तक सीमित है। भारत के लिए स्कृताधिष्ठित भाषा बनानी होगी।

रपनहल्ली के मार्ग पर
दिसंबर १९५७

: १५ :

क्रतो स्मर, कृतं स्मर

विनोबा—तुमने लिखा था—"'कृतं स्मर' का अर्थ अपना किया हुआ याद करो, हो सकता है।" पहले मैंने भी वैसा ही अर्थ किया था। पर अधिक सोच-विचार करने पर उसमें परिवर्तन करना पड़ा। स्मरण करना हो और वह भी अंतिम स्मरण तो ईश्वर का किया हुआ ही याने उसका हमपर किया महान् उपकार ही स्मरण करना ठीक होगा।

मैं—'अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। य प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥' गीता में वर्णित इस प्रयाण-विधि से आपका अर्थ ठीक मेल खाता है। इसमें जो 'एव' शब्द है, उससे अन्य स्मरण का निषेध स्पष्ट है और इसलिए आपका अर्थ—'अपने स्मरण छोड़कर' पूर्ण संतोषजनक मालूम होता है। अलावा इसके ईसा के इन अंतिम शब्दों से भी उसका मेल है: Thine will be done 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥' गीता के इस अंतिम उपदेश से भी यह पूर्णतया मेल खाता है। लेकिन 'क्रतो' संबोधन अपने अनु-स्मरण का त्याग करने नहीं, उसका विस्मरण न हो इस अर्थ में प्रयुक्त है यह मेरा खयाल है। इसीलिए पहले वाक्य में कर्म का निर्देश ही नहीं है। दूसरी बात, ईश्वर के 'कृत'—उपकार—का स्मरण करो, कहने का प्रयोजन क्या? स्मरण करना है तो सीधे उसीका किया जाय, उसके 'कृत'

का क्यों ? गीता भी तो उसीका स्मरण बताती है उसके 'कृतं' का नहीं। जड़भरत की कथा भी बताती है कि उसपर पशुयोनि में जन्म लेने की नौबत आ गई, क्योंकि वह ईश्वरमय होने का अपना संकल्प भूल गया था। यह कथा मेरे अर्थ को पुष्ट करती है। कार्यरूप 'कृतं' कारण रूप 'क्रतु' के लिए ही प्रयुक्त है। मैं मानता हूं कि उसका यही अभिप्राय है।

विनोबा—घनश्यामदास बिड़लाजी ने एक बार लिखा था—"मैं आपकी किताबें पढ़ा करता हूं। आपकी 'ईशावास्यवृत्ति' मुझे बहुत पसंद आई। पर **'क्रतो स्मर, कृतं स्मर'** का मेरा अर्थ आपके अर्थ से भिन्न है।" 'ओ संकल्पमय जीव, अपने संकल्प का स्मरण करो और उसके अनुसार क्या-क्या किया (या नहीं किया) उसका स्मरण करो।' यह है मेरा अर्थ। यह अर्थ मेरे दैनंदिन जीवन से बिल्कुल मेल खाता है। दिन भर क्या-क्या करना है, मैं तय कर लेता हूं और उसके अनुसार दिनभर मे क्या-क्या किया गया, मैं देख लेता हूं।" उनका यह अर्थ मीठा है। मैंने उन्हें लिखा 'क्रतो' के बदले 'क्रतु' लेने पर आपका अर्थ ठीक लगता है। पर मैं अपने अर्थ पर दृढ हूं। यह तो निश्चय मानिये कि अंत समय में मैं ईश्वर को छोड़ और किसीका भी स्मरण नहीं करूंगा।

हरपनहल्ली के मार्ग पर
४-१२-५७

: १६ :

ज्ञानेश्वरी

महाराष्ट्र का धर्मग्रंथ

ज्ञानेश्वरी, रामायण, भारत, भागवत आदि ग्रंथ लोकभाषा मे हैं। मूल संस्कृत ग्रंथों के वे अनुवाद हैं, तो भी उन्हें केवल अनुवाद मानना ठीक नहीं। उन्हें स्वतंत्र मौलिक ग्रंथ मानना चाहिए, क्योंकि उनमे उनकी विशेष दृष्टि रही है। केवल मूल कथा ज्यों-की-त्यों लोकभाषा मे लाना उनका उद्देश्य नहीं। 'ज्ञानेश्वरी' महाराष्ट्र का धर्मग्रंथ है। बाइबिल, कुरान, भागवत आदि ग्रंथों

से तुलना करने पर वह कहीं भी घटा हुआ नहीं मिलेगा। मूल ग्रंथ समझ-कर ही उसका स्वाध्याय होना चाहिए। तमिल की कंब रामायण, तेलुगु का पोतन्ना-प्रणीत भागवत, उड़ीसा का जगन्नाथकृत भागवत, कन्नड़ का व्यास-रचित भारत, मराठी का मुक्तेश्वरकृत और मोरोपंत-प्रणीत भरत सभी ग्रन्थ ऐसे ही हैं। ज्ञानेश्वर 'भाष्यकारातें वाट पुसतु'—अर्थात् भाष्य-कार शंकराचार्य से मार्ग पूछते हुए—अपनी भावार्थदीपिका लिखते हैं। लेकिन अनेक स्थल ऐसे हैं, जहां उन्होंने अपने स्वतन्त्र अर्थ बताये हैं, जिससे विश्वाकार की संभावना होती है। वह कर्म, वर्णविशिष्ट कर्म ही विकर्म, तथा जो करना उचित नहीं वह निषिद्ध कर्म यानी अकर्म। ऐसे अर्थ शांकर भाष्य के सामने रहते हुए भी बनाये हैं। यहां उन्हें भाष्यकार से पूछने की आवश्यकता नहीं महसूस हुई। बारहवें अध्याय में बताये भक्त के लक्षण शंकराचार्य की सम्मति में निर्गुणोपासक के हैं, तो और सब टीकाकारों की राय में बारहवां अध्याय भक्तियोग का होने के कारण वे लक्षण सगुणो-पासक के ही हैं। लेकिन ज्ञानेश्वर ने अपनी टीका में इन दोनों सम्मतियों को 'याहीवरी भजनशील माझा ठाईं' अर्थात् 'इनकी अपेक्षा भजनशील भक्त मुझमें रहता है' कहकर बड़ी खूबी के साथ लपेट लिया है। अंतिम निष्ठा के नाते वे लक्षण निर्गुणपरक हैं, यह शंकराचार्य का विचार उन्हें मान्य है। पर उसीके साथ 'मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते, श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः' यह बारहवें अध्याय का निष्कर्ष भी टाला नहीं जा सकता, यह भी वह नहीं भूले। ऐसे कितने ही स्थल बताये जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि इन सब ग्रन्थों का अध्ययन स्वतंत्र धर्मग्रन्थ के नाते किया जाना चाहिए। ईशोपनिषद् का मेरा गद्यानुवाद मौलिक मानकर उसीपर लिखने की सोच रहा हूं।

वैदिक भाषा और मराठी भाषा

विनोबा—ईशावास्योपनिषद्वृत्ति मैंने गु० नारायण शास्त्री के पास भेज दी थी। आमतौर पर वह उन्हें पसंद आई थी। 'जगत्' याने 'जीने-वाले' मेरे इस अर्थ पर उन्होंने आपत्ति उठाई थी।

मैं—जगत् अर्थात् जङ्गम, चरत् (चलनेवाला) अर्थ स्पष्ट है। चरा-

चर सृष्टि से जीवाजीव सृष्टि का मतलब हम जानते हैं। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' वचन प्रसिद्ध है। 'जगत्' जीनेवाले' समझने में कोई आपत्ति नहीं। मैं मानता हूं कि मराठी की धातु 'जगणे' जीना उसीसे निकली है। वह मूल में वैदिक है, यह मेरी धारणा है। मराठी के कई शब्द सीधे वेदों से निकले हैं, उदाहरणार्थ देव, एकमेक, अवाङ्व्य, वैसे ही 'जगणे' धातु आदि-आदि।

... ...

गीता नारिकेल-पाक

विनोबा—गीता नारियल के समान है, वह अंगूर के समान नहीं। युद्ध की कथा उसका कवच है, गांधीजी इस रूपक को मानते थे। वह कहते—वह उपनिषदों का देवासुर संग्राम है। तिलक उसे इतिहास समझते थे।

गीता और शंकर-तिलक अरविंद

शंकराचार्य कर्म-सन्यास का प्रतिपादन करते हैं, तिलक ज्ञानोत्तर कर्म का और अरविन्द मुक्ति के उपरान्त भी कर्म करने का प्रतिपादन करते हैं। इसके मानी यह कि मुक्ति अमुक्ति बन गई। उसमें भी अगर कर्म रहा तो वह मुक्ति कैसी?

गीता और भागवत

भागवत भावप्रधान है, माधुर्य उसकी आत्मा है। अनुवाद में वह नहीं पकड़ा जाता। गीता अर्थप्रधान है।

: १७ :

अध्ययन की पद्धति

अध्ययन का विषय एक नहीं रहता। उसमें अनेक शाखोपशाखाएं विद्यमान रहती हैं। अनेक अंगोपांग हुआ करते हैं। उनमें से एक-एक को लेकर उसका चिंतन किया जाय। पहले समग्र दर्शन कर लिया जाय, बाद में अंगशः अध्ययन हो। अन्त में फिर एक बार समग्रता में उसे देखा जाय। प्रथम समग्र निरीक्षण में सूक्ष्म ज्ञान नहीं मिला हो, तो बाद में विश्लेषण करके अंगशः उसे देखा जाय। उसके सब अंगों को मिलाकर एकीकरण किया जाय। इस

जाता है। इसका अर्थ यह कि श्रद्धा पैदा हुई, पर निष्ठा नही।

महम्मद का शस्त्रधारण

परिस्थिति के कारण आदमी गिर जाता है। महम्मद मक्का से मदीना भाग गये। पर वहां भी विरोधियों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। वह सताये जा रहे थे। उनपर थूका जा रहा था। तब उन्होंने आत्मरक्षा के लिए शस्त्र धारण किया और अपने अनुयायियों से धारण कराया।

आज संसार मे सर्वत्र धर्म-ग्रंथ फैले हुए हैं। बाइबिल दुनिया की सब भाषाओं में प्रकाशित हुआ है। उसका प्रसार दुनिया भर में हो गया है। उसके साथ-ही-साथ दुनिया का शस्त्रसंभार भी बढ चुका है। धर्म-ग्रंथो का इस कदर प्रसार दुनिया में पहले कभी नही हुआ था और शस्त्रसभार भी इतना कभी नही बढा था। इतना विज्ञान पहले दुनिया में था ही नहीं। सत्य नही बोलना चाहिए, ऐसा कोई नहीं कहेगा और न कोई सिखायेगा भी। घर बाधते समय हम दीवारे, खम्भे आदि बधवाते-गड़वाते हैं, और हम जानते हैं कि इसमे गलती होने पर घर टिक नही पायेगा। पर सत्यादि नीति-धर्मो के विषय में इस प्रकार की निष्ठा हममे दृढमूल नही हो गई है।

मनु और पीनल कोड

'अदंड्यान् दंडयन् राजा दंडयांश्चापि अदंडयन्। नरकं महदाप्नोति', यह मनु की उक्ति है। दडनीय अपराधी को सजा देनी चाहिए। अगर वह वैसे ही छूट गया तो वह बडा अधर्म होगा, अन्याय होगा, यह उनकी धारणा थी। लेकिन आज का पीनल कोड दडनीय अपराधी बिना दड पाये रह जाय तो उसमे दोष नही मानता। पर अदडनीय निरपराध आदमी दंड का शिकार हो जाय तो बड़ा अधर्म माना जाता है, यह मनु की अपेक्षा प्रगति है। यह समाज की प्रगति है, उन्नति है। पर दड का शिकार कोई भी न हो, कोई भी दडनीय नही है, सब शिक्षणीय हैं, सुधार के ही लायक है, इन विचारो तक समाज की उन्नति नही हो गई है।

न्याय और दया

मं—विचार मे परिवर्तन होगा, सुधार होगा, लेकिन तबतक राह ने को हम तैयार नहीं। मै मानता हू कि इसलिए दंड-शक्ति समाज मे

स्वीकृत हो गई है।

विनोबा—जिसने मृत्युदंड पाने योग्य गुनाह किया है उसे फासी पर लटका देना ही चाहिए, बगैर उसके न्याय नहीं होगा, यह मान्यता पहले थी। अब हम कहते हैं कि न्याय में दया रहे। पर न्याय के घर के एक कोने में दया को स्थान दिया गया है, यही इसका मतलब है। लेकिन दया ही की जाय, वही न्याय है, इस विचार को अबतक मान्यता नहीं मिली। जो फांसी की सजा पा गया है, वह राष्ट्रपति के पास दया की याचना करे। राष्ट्रपति देखेंगे कि वह खूनी दयापात्र है या नहीं, उसके गुनाह में कहीं 'ग्रेस' की गुजाइश है या नहीं, और तब दया करेंगे, और फांसी के बदले आजन्म कालेपानी की सजा फरमायेंगे। पर फासी की सजा ही रद्द की जाय यह विचार मान्य नहीं हुआ है। रामदास गांधी की कोशिश थी कि गांधीजी के खूनी को फांसी पर न लटकाया जाय। हृदय-परिवर्तन के लिए अवसर दिया जाय। यह मन बहुत विशाल है। पर समाज और सरकार को यह मंजूर नहीं था।

इसलिए अपने ग्रंथ ज्यों-के-त्यों हम नहीं स्वीकार कर सकेंगे। उनका सुधार करके ही उन्हें चुनना चाहिए। क्या 'मनुस्मृति', क्या अन्य ग्रंथ, इस प्रकार कड़ी जांच के बाद ही लेने पड़ेंगे।

शंकर, ज्ञानदेव और गांधी

मैं—इसलिए आपका सार श्लोक और विशेषकर 'जीवनं सत्यशोधनम्' वाला चरण मुझे बहुत भाता है।

विनोबा—शंकराचार्य का जगन्मिथ्यावाद असत्य नहीं। पर वहां मिथ्या शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में किया है और इसका अर्थ है, जो सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं। लेकिन आज 'मिथ्या' का अर्थ झूठ लिया जाता है, जो कि भ्रांत है। इसमें मैंने कुछ सुधार कर लिया है—जगत् स्फूर्ति। इसमें मैं तीनों प्रकार से सहचार्यता चाहता हूं। 'ब्रह्म सत्यम्' शंकर का 'जगत्-स्फूर्ति' ज्ञानदेव का 'त्यागजीवन सत्यशोधनम्', गांधीजी का ऋण है। इन तीनों से मैंने बड़ा समाधान पाया है।

सामने घना अंधकार हो तो उसपर प्रकाश-पुंज छोड़ना विज्ञान-निष्ठ

है। सामने द्वेष का आधिक्य है, तो उसपर बहुत प्रेम करना धर्म-निष्ठा है। लेकिन अबतक मानव-समाज में उसका आविर्भाव नहीं हुआ। सत्य, अहिंसा आदि श्रद्धाएं उदित हुई है, पर धर्म अबतक बना नहीं। 'धारणात् धर्मः'।

मैं—बुद्ध की सम्मति मे भी 'जीवनं सत्यशोधनम्' सही है। 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या वा स्फूर्तिः'—ये वाद हैं। उनके बारे में उन्होंने मौन धारण किया है।

... ...

वे भी मनुष्य ही थे

विनोबा—लोग शंकराचार्य और बुद्ध की तुलना करते हैं, पर वे यह नहीं देखते कि शंकराचार्य ३२वें वर्ष में दिवंगत हुए और बुद्ध ८० साल तक जीवित रहे।

मैं—शंकराचार्य ने समाज की भ्रान्त धारणाओं के सामने सिर नहीं झुकाया। उन्होंने बिना हिचक मां के शव के तीन टुकड़े करके उसका दहन किया। इस उदाहरण से ऐसा प्रतीत होता है कि अगर वह बुद्ध की भांति दीर्घ आयु पा जाते तो कितनी ही क्रांतिकारी बातें कर देते।

विनोबा—बापू एक बार मुझसे बोले—"किसीने ईसा की कृष्ण के साथ तुलना की है, पर यह ठीक नहीं। ईसा ३२वें वर्ष में शूल पर लटक गये और कृष्ण १२५ बरस तक जीवित रहे।" आयु का विचार करना चाहिए। शंकराचार्य से मेरी तुलना करने में शंकराचार्य के लिए अन्याय होगा। वह भी मनुष्य ही थे। पर लोग इस बात को भूल जाते हैं।

कानहल्ली की राह पर,
५-१२-५७

देने लायक हो। मैने कहा—जी नही। फिर वह बोले—ग्राप ही क्यो नही लिख देते ऐसा कोई ग्रथ ? तब मैने उन्हें ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ के ग्रथो के सार की जानकारी दी और इसी प्रकार तुकाराम और रामदास की रचनाओ से भी चुनाव करके 'पचामृत' बनाने का विचार उनके सामने रख दिया।

मैं—इसके मानी है कि ग्रापको व्यक्ति या ग्रंथ के प्रामाण्य की अपेक्षा बुद्धि-प्रामाण्य अभीष्ट है।

विनोबा—हम अपनी सम्मति बता सकते हैं, पर हर व्यक्ति अपनी सूझबूझ से ही काम लेगा।

बुद्ध-मत

मैं—बुद्ध की यही मान्यता है। वह कहते हैं—'हर व्यक्ति अपनी बुद्धि की कसौटी पर मेरा विचार कस ले। खरा उतरने पर उसे स्वीकार करे।' इसका नाम बुद्धि-प्रामाण्य। बुद्धौ शरणमन्विच्छ।

विनोबा—ग्रमृतानुभव में ज्ञानेश्वर भी यही कहते हैं :

> **परी शिवें का श्री-वल्लभें। बोलिलें एणें चि लोभें।**
>
> **मान् न; तेंहि लाभे। न बोलतां हि॥** ग्र० ३.३८

शकर कहते है या विष्णु कहते हैं, इसी कारण हम किसी बात को नही मानेंगे।

स्वतत्र बुद्धि के बिना ज्ञान मोर के पिच्छों की ग्राखों के समान है। ग्राखें हैं, पर दृष्टि नही।

> **मोराचां ग्रांगीं ग्रसोसें। पिसें ग्राहाति डोलसें।**
>
> **ग्राणि एकली दीठी नसे। तैसें तें गा॥** ग्र. १३.८३३
>
> **पंसु-कूल-धरं जन्तुं किसं धमनि-संथतं।**
>
> **एकं वनस्मिं भायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥** ध० ३९५

पासुकूल याने स्थ्याकर्पट, फेंके हुए चीथड़े। 'जन्तु' का ग्रर्थ राधाकृष्णन् ने दिया नही। जन्तु याने प्राणी, जो केवल प्राणधारण किये हुए है, या जिसे मनुष्य करके पहचानना कठिन है। ऐसे व्यक्ति को ब्राह्मण याने ग्रादर्श जीवन बितानेवाला कहना हो, तो विचार उठता है कि क्या यही

बुद्ध का मध्य मार्ग है ?

'न नग्नचरियाः न जटा न पंका' आदि श्लोक में कहा है कि बाह्य स्थिति ब्राह्मण का लक्षण नहीं, आंतरिक शांति जैसे गुण ही ब्राह्मण-लक्षण हैं। मैंने इन दो विसवादी गाथाओं को एकत्र रखा है। विचार की कसौटी पर उन्हें कस लेना पड़ेगा। दोनों को ज्यों-का-त्यों नहीं लिया जा सकेगा। एक को ही स्वीकार किया जा सकेगा।

मैं—'नग्नचर्या' पद से मुझे लगता है, महावीरादि जैनों की तरफ अंगुलि निर्देश है। उस पर कुछ कड़ी नजर भी दिखाई देती है।

विनोबा—महावीर के बदन पर का वस्त्र काटों में उलझकर फट गया, बाद में पहना हुआ वस्त्र भी चला गया। तब वह विवस्त्र घूमने लगे। वह अत्यन्त सुन्दर थे। नग्न रहना मुझे पसन्द है, सपने में कभी-कभी देखता हू कि मैं नग्नावस्था में विचर रहा हू। आंखों पर चश्मा और कमर पर धोती मुझे झंझट-सी लगती है।

लगोटी पहनना, मौजी बधन सस्कार है। वह है लक्षण सुसंस्कृतता का। पर वस्त्र-रहित रहना ही आदर्श है। वह प्रमुख लक्षण है। 'मुनियो वातारशना' में वर्णित नग्नता-सम्प्रदाय वेद में भी पाया जाता है। यद्यपि यह बात है तो भी तुकाराम के वचन—त्याच्या गलां माल असो नसो—अर्थात् उसके गले में माला रहे या न रहे—के अनुसार ही बुद्ध का अभिप्राय है, और वही ठीक है।

कनाहल्ली की राह पर,
५-१२-५७

: २० :

स्थितप्रज्ञता की नितान्त आवश्यकता

मैं—आज ससार में आत्मज्ञान और सृष्टिज्ञान काफी मात्रा में है, तो भी क्या यह कहा जा सकता है कि समाज का दुःख घट गया है और मानव सुखी हो गया है ?

विनोबा—दु:ख त्रिविध है : आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। लेकिन कौन-सा दु:ख किस प्रकार का है, यह निश्चित करने मे हमेशा मैं उलझन में पड जाता हू। इसलिए अब शारीरिक, सामाजिक, मानसिक इस त्रिविध रूप मे हम उसका विचार करेंगे।

शारीरिक दु:ख आज बहुत ही कम हो गये हैं। पहले जन्मते ही कितने ही मर जाते थे। थोडे ही बचते थे। इनमें से रोगों के कारण बहुत मर जाते, जीवनावधि में भी अनेक आपत्तियों से जूझना पडता। पर विज्ञान के कारण मृत्यु-सख्या घट गई है। रोग, दु:ख, कष्ट, यातनाएं हट गई हैं। विज्ञान इतनी तरक्की कर चुका है कि बढती आबादी पर कैसे रोक लगाई जाय, यह समस्या उठ खडी हुई है।

सामाजिक दु:ख बढे हुए दिखाई देते है। लेकिन उनके भी निकट भविष्य मे इलाज मिल जायगे। सामाजिक बीमारियां आज व्यापक और सर्वाविचारणीय बन बैठी हैं। पर पुराने जमाने की भाति आज कोई किसी की औरत को नही भगा ले जाता। रावण ने सीता को हरण किया। दुर्योधन ने द्रौपदी को विवस्त्र किया। ये बातें आज के समाज मे नहीं हुआ करतीं। पहले एक राजा अनेक स्त्रियों से ब्याह कर लेता, जिसके कारण अनेकों बिनब्याहे रह जाते थे। वह स्थिति आज नही। पहले वधू को भगा ले जाना विवाह का एक प्रकार माना गया था। कृष्ण रुक्मिणी को उठा ले गया था। आज कोई भी यह नही कहेगा। आज सामाजिक दु:ख बहुत-से नहीं हैं। जो हैं उन्हें शीघ्र ही दूर किया जा सकेगा। उनका निवारण अतर्राष्ट्रीय दृष्टि से होगा। उनके बारे मे जागतिक प्रबन्ध हो जायगा।

लेकिन मानसिक दु:ख आज बहुत बढ गये है। मन पर अकुश रखना आज की कडी आवश्यकता है, क्योंकि विज्ञान सौगुना बढ गया है, पर मन की शक्ति का विकास उसकी अपेक्षा बहुत ही कम हुआ है, हालांकि वह पहले की अपेक्षा बढ गई है। पहले चोरी के लिए चोर के हाथ-पैर काट डालते थे। आज हम वैसा नही करते। आज के सवाल अतर्राष्ट्रीय स्वरूप के यानी व्यापक होते हैं, जिनका निर्णय तुरन्त करना पडता है। इसलिए हम स्थितप्रज्ञ के लक्षणों को जानने में लग गये हैं। पहले मन पर काबू रखने से काम चलता था, पर आज विज्ञान से अमर्याद विनाश के

कारण देकर उससे काम नहीं बनेगा। अब तो मन के ऊपर उठने की आवश्यकता है। मन को सूली पर लटकाकर रखना चाहिए। वेदान्ती इस प्रक्रिया को मनोनाश कहते हैं। मन का नाश हो जाय तो क्या होगा, इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। बुद्धि है। वह बुद्धि रागद्वेष से परे होकर संसार की समस्याएं सुलझा सकेगी। रागद्वेष का मिट जाना ही मनोनाश है। वही उन्मयन है। समाजवाद, साम्यवाद आदि शास्त्र समाज के प्रश्न हल नहीं कर सकते। उसके लिए बुद्धियोग ही चाहिए, स्थितप्रज्ञता की आवश्यकता है। किसी भी कारण से मन क्षोभ होना नहीं चाहिए। ऐसी अक्षोभ्य शांति जहां होगी वहां यह समस्या हल होगी। प्रतापगढ़ पर का प्रदर्शन मन का खेल है, क्षोभ है। वह बम्बई का सवाल नहीं हल कर पायेगा। राग-द्वेष दोनों चोर हैं, बगैर उनके ऊपर उठे यह प्रश्न नहीं सुलझ पायगा। इस रागद्वेष के कारण ही महाराष्ट्र का विकास रुक-सा गया है। दुनिया में ग्राम-स्वराज्य और विश्व-शासन दो ही बातें रहेंगी। बीच का सब टिक नहीं पायगा। संयुक्त महाराष्ट्र, महागुजरात जैसे प्रश्न मूढ़ हैं। मन के ऊपर बिना चढ़े वे नहीं सुलझेंगे।

हुबिनाकलगी की राह पर,
ता० ६-१२-५७

: २१ :

कणिका—२

[illegible]-विज्ञान का समान

पिंड ज्ञान और ब्रह्माण्ड ज्ञान में से आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान मिलता [illegible] पिंड [illegible] से आत्मज्ञान और ब्रह्माण्ड-संशोधन से ब्रह्मज्ञान। [illegible] केवल [illegible] अनुभव प्रक्रिया आदि का निरीक्षण [illegible] वह [illegible] ज्ञान होगा। आत्मज्ञान के लिए [illegible] आवश्यक है।

शरीर-यात्रा, समाज-सेवा और चित्तशुद्धि

मानव शरीर, समाज तथा चित्त के लिए परिश्रम किया करता है। इन तीनों में से प्रथम चित्त-शुद्धि की साधना करके बाद में समाज-सेवा करने का उसका विचार रहता है। चित्त-शुद्धि के साथ वह शरीर का योग-क्षेम भी चलाता ही है। समाज-सेवा वैसी ही रह जाती है। इन तीनों में प्रधानता चित्तशुद्धि की है। लेकिन उसके बाद समाज-सेवा का स्थान रहना चाहिए। उसके बाद ही शरीर-यात्रा—यह क्रम रहे। वास्तव में तीनों को एक साथ ही चलना चाहिए।

धर्म-संकट

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितं मुखम्'—इसका आशय क्या? किसीके पैरों में सौ तोले की चादी की शृंखला चढाई जाय, तो उसे बंधन नही माना जाता, अलकार माना जाता है। वास्तव में वह बेडी ही है। लोहे को बेड़ी कहते ही हैं। वैसे धर्म और अधर्म में चुन लेना हो तो कोई भी समझदार व्यक्ति धर्म को ही चुन लेगा। लेकिन दोनों भी धर्म ही सामने आते हैं, और उनमें से कौन-सा अधिक हितकारी है यह सवाल उठ खडा होता है तब परख हो जाती है। तब सूक्ष्म विचार करना पडता है, और धर्म कौन-सा और मोह कौन-सा चुन लेना होता है। राम ने सीता को वन में त्याग दिया। कोई-कोई राम को इसके लिए दोष लगाते हैं। लेकिन जब यह प्रसग आ पडा कि पति के नाते अपना कर्तव्य क्या है और राजा के नाते क्या है, इनमे चुन लेना है तब राम ने यह पहचाना कि मैं राजा हूँ और मेरा पहला कर्तव्य है प्रजानुरंजन और अन्य कर्तव्य को उस मुख्य धर्म की बलिवेदी पर अर्पण किया। इनमें से पारिवारिक कर्तव्य हिरण्मय पात्र है।

रामचन्द्रजी कहते हैं—

> स्नेहं दयां तथा सौख्यं यदि वा जानकीमपि।
> आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा॥

पर सीता ने भी लक्ष्मण द्वारा संदेश भेजा है—'वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा, तपस्विसामान्यमवेक्षणीया।

ग्ररविंद का उज्ज्वल ग्रयश

श्री ग्ररविंद की साधना सफल हो गई थी या नही ? उनके शिष्य मानते है कि उनकी साधना पूर्णता को पहुच चुकी थी और वह ग्रव्यक्त रूप मे ग्रवतीर्ण हुए है। उनकी ग्राध्यात्मिक सत्ता जगत मे काम करने लग गई है। लेकिन इस बारे मे मैंने एक बार कहा था कि ग्ररविंद की साधना ग्रयशस्वी हो गई है।

जगत मे तीन प्रकार के लोग होते है। एक वे है जो ग्रपनी सामर्थ्य के ग्रनुसार ग्रपना ध्येय निश्चित कर लेते है, टकसार बाप्पा की भाति। दूसरे वे जो ग्रशत सफल ग्रौर ग्रशत ग्रसफल होते है, सरदार वल्लभभाई के समान। तीसरे वे जो केवल ध्येयवादी है ग्रौर ग्रपना ध्येय इतना ग्रलौकिक रखते है कि वहातक कोई भी पहुच नही सकता। ग्ररविंद इसी प्रकार के थे।

मेरी साधना ग्रधूरी

"ग्रापकी चित्तशुद्धि पूर्ण हुई है या नही ?"

—जबतक देह है तबतक साधना ग्रधूरी है कहना चाहिए।

"पर ग्रापमे कोई ग्रशुद्धि है, ऐसी कल्पना नही की जा सकती।"

—दूसरे उसे समझ नही पाते। वही खुद देख सकता है। चडोल पक्षी सूर्य की ग्रोर उडान भरता है ग्रौर दृष्टि की पहुच से परे जाता है। पर वह सूर्य तक थोडे ही पहुच जाता है ? पृथ्वी से वह १०००००० फुट ऊपर गया हो तो भी उसमे ग्रौर सूर्य मे ग्रपार ग्रन्तर रहता ही है।

पीठाधीश शकराचार्य ने एक बार मुझसे पूछा, "ग्राप भूदान-पद-यात्रा किसलिए कर रहे है ?" तब मैंने जवाब दिया, "चित्तशुद्धि के लिए।" कई लोग भावनात्मक दृष्टि से देखते है। उन्हे ग्राभास होता है कि ग्रपनी साधना सफल हो गई। लेकिन मैं हू गणिती, मैं ग्रपनी साधना को ठीक नापता रहता हू। मुझे प्रतीत नही होता कि ग्रपनी साधना पूर्ण हुई। वैसा ग्रनुभव किया जाय तो कहा जा सकेगा। पर ग्रबतक तो वैसा ग्रनुभव नही।

मार्ग पर का स्वागत

"मार्ग मे ग्रापके दर्शन तथा स्वागत के लिए लोग खड़े रहते है। उनके

लिए तनिक ठहरकर आप उनका स्वागत स्वीकार क्यों नहीं करते ? वैसा न करना अच्छा नहीं मालूम होता ।"

—मेरी दो अवस्थाएं रहती हैं : ध्यानावस्था तथा सेवावस्था । जब मैं ध्यानावस्था में रहता हूं, या पड़ाव दूर का होता है तब मैं बीच में नहीं रुकता । लेकिन साथवालों ने सुझाया और जमा हुए लोग शांत-सुस्थिर हों तो दो-एक मिनट के लिए ठहर जाता हूं और कभी-कभी बीस-पच्चीस मिनट भी भाषण में बिताता हूं ।

मन को काबू में कैसे रखा जाय ?

बाह्य नियमन का असर नहीं होता । नियमन आंतरिक चाहिए । मन के कहे अनुसार बरतना नहीं चाहिए । बुद्धि का आदेश सुनना आवश्यक है । इस निर्णय पर पहुंचने से मन काबू में किया जा सकता है ।

हिरेहड़गली के मार्ग पर,
ता० ७-१२-५७

: २२ :

शिवाजी : भानुदास : वल्लभाचार्य

हंपी विरूपाक्ष मंदिर में शिवाजी

इस बेल्लारी जिले मे जो हंपी (विजयनगर) है वह हंपी विरूपाक्ष नाम से प्रसिद्ध है । वहां विरूपाक्ष महादेव का मंदिर है । पुराने जमाने मे वहा भयानक जंगल था । शिवाजी महाराज अपने कर्नाटक-आरोहण में उस मंदिर में गये थे । सैनिकों और अन्य लोगों को बाहर छोड़कर वह अकेले अन्दर गये । बहुत समय बीत जाने पर भी वह बाहर नहीं आये । क्या हुआ, देखने साथवाले लोग अन्दर गये । देखते क्या हैं कि महाराज समाधिस्थ बैठे हैं । वहां से बाहर जाना उन्होंने नहीं चाहा । वहीं रहने का अपना विचार उन्होंने व्यक्त किया । तब अमात्य ने कहा—हम तो यहां आरोहण लिए आये हैं और बाहर सेना खड़ी है । तब वह समझ गये और वहां से

न पड़े। यह घटना प्रसिद्ध नहीं है, पर इतिहासज्ञ इसे जानते हैं।

... ...

भानुदास का कार्य

विजयनगर के राजा ने पंढरपुर से विट्ठल की मूर्ति विजयनगर में ला रखी थी। पंढरपुर मुसलमानों के कब्जे में था। उस अशान्ति के समय में वहां मूर्ति सुरक्षित नहीं रहेगी, इस विचार से सद्भावना से ही उन्होंने यह काम किया था। पर मूर्ति की सुरक्षा के लिए सेना रखी जाय या भक्तों द्वारा प्राणों का बलिदान किया जाय, ऐसी कुछ घटना नहीं घटी। पचास-साठ बरसों के बाद एकनाथ के दादा संत भानुदास ने विजयनगर से वह मूर्ति लाकर फिर से उसकी स्थापना पंढरपुर में कर दी। यह उनका बहुत बड़ा कार्य है। यह मामूली काम नहीं। एकनाथ के मन पर इस काम की गहरी छाप है। भानुदास महान् भगवद्-भक्त थे। अपने जत्थे के साथ वह विजयनगर गये। उनकी भक्ति देखकर राजा सन्तुष्ट हुआ। वह मूर्ति भानुदास के हवाले करनी ही पड़ी। भानुदास ने निश्चय किया था कि बिना मूर्ति लिये वह लौटेंगे ही नहीं। इस काम के लिए वह कुछ दिन विजयनगर में ठहर गये। इस किस्से का जिक्र एकनाथ ने अपने अभंगों में बार-बार किया है।

... ...

पंढरपुर और वल्लभाचार्य

वल्लभाचार्य तेलंगाना के निवासी थे। वह बड़े विद्वान् थे। देश भर में वह घूमते रहते। वह पंढरपुर पहुंचे। पहले अकेला विट्ठल ही वहां था। बाद में विट्ठल के पड़ोस में रुक्मिणी की मूर्ति स्थापित की गई है। उस मंदिर में रहते हुए उन्हें विट्ठल से दृष्टांत प्राप्त हुआ कि 'यात्रा बस हो गई, अब गृहस्थाश्रम का आयोजन करो। मैं तुम्हारे कुल में जन्म लूंगा।' उसके अनुसार उन्होंने उत्तरप्रदेश में जाकर विवाह किया और मथुरा में जा बसे। उनके जो पुत्र हुआ उसका नाम विट्ठलनाथ रक्खा। उन्होंने वल्लभ-सम्प्रदाय को खूब बढ़ाया। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ-सम्प्रदाय राजस्थान और गुजरात में फैल गया है। वल्लभभाई और विट्ठलभाई

नाम उन्हींकी बदौलत है। गुजरात में दयाराम अत्यंत मधुर काव्य का रचयिता कवि हो गया है। पर उसके काव्य में तत्वविचार है। इस कारण उसका प्रचार ज्यादा नही। सूरदास का काव्य लोकप्रिय है। सब ओर उसका प्रभाव है। द्वारका के बारे में महाराष्ट्र में भी बड़ी भक्ति है। ज्ञानदेव ने कहा है—"द्वारकेचे वाटे पडलें सुनाटें पाऊल नाहीं" अर्थात् द्वारका के मार्ग पर जो कदम चला उसकी राह कभी सूनी नही पडी, वह बहती ही रही। महाराष्ट्र और गुजरात का सम्बन्ध बहुत पुराना है। विदर्भ के लोगो से मैने कहा, "हमारी रुक्मिणी वर्धा-तीर की और कृष्ण द्वारका के निवासी। दोनो बम्बई राज्य मे इकट्ठा हो रहे हैं। पुराना सम्बन्ध नया और दृढ़तर हो रहा है।"

हिरेहड्गली की राह पर,
ता० ७-१२-५७

: २३ :

सेनापति बापट

आज चर्चा के सिलसिले मे सेनापति बापट का नाम आया। तब विनोबा ने उनके सम्बन्ध मे कई मजेदार किस्से सुनाये।

१ एक बार सेनापति बापट मुझसे मिलने आये थे। वह बोले—शंकराचार्य ज्ञान पर इतना बल क्यो देते है, मेरे दिमाग मे घुस नही सकता। मैं बोला—आखिर महत्त्व दिमाग का ठहरा न ? यही तो शंकराचार्य कहते हैं।

२. सेनापति बापट बोले—लोग ईश्वर का अस्तित्व अनेक प्रकार से सिद्ध किया करते हैं। मुझे उसकी प्रतीति पर्याप्त प्राप्त हुई है। मैंने कितनी ही बार मरने की कोशिश की, पर ईश्वर के सामने मेरी एक न चली। अब मैंने उस धुन का त्याग कर दिया। बोला, जब उठा ले जाना है, ले चलो।

३. आपकी सफाई का काम कैसा चल रहा है ? मैंने पूछा।

४ गोवा के लिए सत्याग्रह करने का आन्दोलन चल रहा था। एक प्रवचन में मैंने कहा था कि जबतक भारत सरकार बैठी हुई है, तब-तक उसे सत्याग्रह करने का कोई अधिकार नहीं। सेनापति बोले कि विनोबा का कहना ठीक है, उनकी राय ठीक मेरी जैसी ही है कि भारत सरकार को चाहिए कि गोवा पर सेनासहित धावा बोल देना चाहिए।

५ एक बार सेनापति बापट ने मुळशी तहसील में सत्याग्रह-संग्राम छेड़ा। पर उसमें दीर्घदृष्टि का अभाव रहा। देश को बिजली की जरूरत थी। वास्तव में सरकार का फर्ज था कि उन गांवों को दूसरी जगह बसा देती। लोगों को जमीन देना आवश्यक था। सेनापति का भी कर्तव्य था कि वे लोगों को ठीक-ठीक समझा देते कि यह सब देश के कल्याण के लिए कैसे आवश्यक है, और सरकार से सहयोग करना उनके लिए कैसे जरूरी है। किन्तु अल्पदृष्टि के कारण यह नहीं हो सका।

हिरेहडगली के मार्ग पर,
ता० ७-१२-५७

: २४ :

अवतार-कल्पना

मैं—अवतार की कल्पना क्या है ?

विनोबा—सनातनी मानते हैं कि ईश्वर ही अवतार लिया करता है। योगी अरविंद भी मानते हैं कि वह ईश्वर के पास जाकर उसके संदेश के साथ दुनिया में वापस लौटते हैं, जगतोद्धार करते हैं, अवतार लेते हैं। आर्य-समाजी मानते हैं कि ईश्वर अवतार नहीं धारण करता।

ईश्वर याने सत्ता सामान्य। उसमें सत्ताविशेष विलीन हो जाता है। विलीन होने के बाद लौटे कैसे ? गंगाजी में मिली हुई बूंद फिर ज्यों-की-

रयो कैसे लौटेगी ? बहुत हुआ तो पूर्व-विशेष और कई नये विशेष लेक
अगर कोई आविर्भूत हो और पूर्व के सत्ता-विशेष का अभिमान धारण क
तो उसे उस सत्ता-विशेष का अवतार मानना संभव है। उदाहरणार्थ, ज्ञान
देव का एकनाथ और नामदेव का तुकाराम। पर यह कल्पना पुनरावर्तन वे
समान हो गई। इसमें मुक्ति का अभाव मानना पडेगा। इसकी अपेक्षा य
कहना ठीक होगा कि ईश्वर ही अवतार लेता है, कोई भी मुक्त पुरुष दुबार
अवतार नही लेता। पर अरविंद का विचार भिन्न है। उनकी राय मे
जीव मुक्त होकर फिर जगतोद्धार के लिए जगत् मे आविर्भूत होता है औ
ऐसे अनगिनत मुक्तों के अवतार हो सकते हैं। लड़का पढ-लिखकर तैयार
होता है तब वह वैसे ही बैठा नही रहता, खुद पढाने लग जाता है। ठीक
इसी तरह जीव साधना द्वारा मुक्ति पाता है और दुनिया का मार्ग-प्रदर्शन
करने फिर अवतीर्ण होता है। उसके इसी जन्म-कर्म को दिव्य जन्म-कर्म
कहते हैं। इससे किसी भी प्रकार के बन्धन मे वह नही फस जाता। मुक्ति
से पहले का जन्म और कर्म प्राकृत है और ससार का कारण होता है।
लेकिन यह दिव्य जन्म-कर्म उस प्रकार संसार का कारण नही होता। यह
कल्पना रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैततत्त्व के अनुसार दीखती है। अरविंद
अपने ग्रथों मे हमेशा शकराचार्य का उल्लेख करते हैं, पर कही-कही रामा-
नुजाचार्य का भी उल्लेख पाया जाता है।

आर्यसमाजी मानते हैं कि ईश्वर अवतार ग्रहण नही करता। मैंने
कहा—जीव के मुक्त होने के समय अगर अपना कोई कार्य-सकल्प ईश्वर
उसके साथ जोड दे तो क्या यह सभव है या नही ? तब उन्होंने उसे मान
लिया। वही अवतार क्यो न कहा जाय ? हर्ज क्या है ?

मैं—उसको हम अवतार नही कह सकते, क्योंकि मेरी धारणा है कि
अवतार मे अपने अवतार होने का भान अपेक्षित है, जैसे ईसा और मुहम्मद
को था।

विनोबा—तो फिर उसके साथ ईश्वर का ज्ञानसंकल्प भी जोड दिया
जाय।

मैं—मुझे ये सब ईश्वर-जीव-जगत् विषयक उत्प्रेक्षाओं-सी लगती हैं।
के अनुसार यह सब अज्ञान है, मिथ्या कल्पना-मात्र है।

विनोबा—अंधं तमः प्रविशंति ये अविद्या उपासते ।
ततो भूय एव ते तमो ये उ विद्यायां रताः ॥

उपनिषदों में कहा ही है। जो अवतारों में विश्वास करते हैं, वे अंधेरे में घुस जाते हैं और जो उसे मिथ्या मानते हैं वे और भी गहरे में प्रविष्ट होते हैं। ऐसा कहना होगा। वास्तव में जो है, उसका अस्तित्व मानना चाहिए।

तुलसीदास की कल्पना

तुलसीदास ने विनयपत्रिका में कहा है—'रीझे भक्ति देत, खीझे मुक्ति', भगवान् प्रसन्न होने पर भक्ति देता है, मतलब कि भक्त-भजन-भाव रखता है, द्वैत रखता है। क्रोधित होने पर मुक्ति देता है। उसके अनुसार 'मानस' में वर्णित है कि राम के हाथों मारे जाने पर राक्षस मुक्त हो गये। लेकिन जो वानर राक्षसों द्वारा मारे गये थे उनपर इंद्र द्वारा अमृतवृष्टि करवाकर उन्हें फिर से जिलाया गया। वानरों के साथ राक्षस क्यों नहीं पुन जीवित हुए? कारण वे मुक्त हो गये थे। मुक्त होने के कारण उनका पुनरुत्थान नहीं।

तुकाराम ने कहा है—जिसे जो भाता है नारायण उसे वह देता है—'भावकीचें दान देतो नारायण'। जो भक्ति की मिठास चखना चाहते हैं, उन्हें भक्ति दी जाती है। जो कूटस्थ नित्यब्रह्म की शांति चाहते हैं, पूर्ण निवृत्ति चाहते हैं, जैसा कि तुम कहते हो, उन्हें वह मुक्ति देता है।

अरविंद का 'सावित्री' महाकाव्य

अरविंदबाबू ने 'सावित्री' नाम का महाकाव्य अंग्रेजी में लिखा है। उसपर उन्होंने जीवन भर परिश्रम किये। आखिर मृत्यु से पहले पूर्ण करने की इच्छा से उन्होंने उसे जल्दी समाप्त किया। इस कारण कई लोगों का अभिप्राय है कि उसका आखिरी हिस्सा ठीक नहीं बन पड़ा है। उनके भक्तों की मान्यता है कि जल्दी में समाप्त करने के कारण वह जोरदार बन पड़ा है। सावित्री जिस प्रकार यम के घर जाकर वापस आई, वैसे ही देहधारी अमरत्व प्राप्त कर सकता है, या मुक्त होकर जन्म ले सकता है। इस प्रकार

की पूर्ण योग की उनकी धारणा है, हालांकि तीन साल वह किडनी-मूत्रपिंड के विकार से बीमार थे और उससे झगड़ते हुए परलोक सिधारे।

अंग्रेजी पर भारतीयों की छाप

उनके इस काव्य की तथा 'लाइफ डिवाइन' ग्रंथ की छाप अंग्रेजी पर रहेगी। भारत के जिन लेखको ने अंग्रेजी भाषा में मूल्यवान रचना की है, और उस भाषा पर अमिट छाप छोड़ी है, वे हैं अरविंद, रवीद्र, गाधी और जवाहरलाल। पहले दोनो का साहित्यिक मूल्य है। आखिरी दोनों का वैयक्तिक मूल्य है। दक्षिण मे अंग्रेजी का प्रसार बहुत है, पर अंग्रेजी पर अपनी छाप छोड़नेवाला स्थायी मूल्य का साहित्य किसीने लिखा नही। राधाकृष्णन् का नाम लिया जायगा। पर वह कोई तत्वज्ञ या स्वतन्त्र विचारक नही है। मराठी मे जैसे बापटशास्त्री या सदाशिव शास्त्री भिडे हैं, वैसे वे हैं। इतना तो कहा जा सकता है कि वह मुहावरेदार अंग्रेजी मे लिखते हैं। सरोजिनी नायडू ने अंग्रेजी मे थोड़ा-सा काव्य लिखा है, पर वह नगण्य-सा है।

मैं—जे कृष्णमूर्ति का नाम लेना पडेगा। उनका लेखन साहित्यिक मूल्य भले ही न रखता हो, पर ऐसा लगता है कि उसके वैचारिक प्रभाव को स्थायी कहना पडेगा। क्या आप यह नही मानते कि अंग्रेजी भाषा तथा जागतिक विचारधारा पर उनकी छाप है?

होल्ललू के मार्ग पर,
ता० ८-१२-५७

: २५ :

प्रश्नोत्तरी

ईश्वर की स्तुतिप्रियता

१ क्या ईश्वर स्तुतिप्रिय है, क्या इसे सद्गुण कहा जाय? अपने खिलौने से अपनी स्तुति की जाय, इसमें क्या रखा है?

—ईश्वर खुशामदखोर नही। पर जिसमे भक्त का हित है उसे करने

की प्रेरणा वह देता है। मा बच्चे को बाबा, मा शब्द सिखाती है। उन्हे नहीसीख लेगा तो सिर्फ रोना ही रहेगा।

ईश्वर गुरु है

ईश्वर परम समर्थ है, तो भी वह कई लोगो को भक्ति करने की प्रेरणा देता है, कइयो को नही देता, ऐसा क्यो ?

वह सिर्फ जगदीश्वर नही, जगद्गुरु भी है। जीवो के विकास के लिए वह उन्हे स्वतन्त्रता देता है। ठोक-पीटकर उन्हे नही गढता। उन्हे सयाना बनाता है, पर अपने निजी अनुभव से। फिर हम देखते है कि सब बच्चे समान रूपसे बोलना नही सीखते। कई तो एक बरस के अन्दर ही बोलने लगते है, कई दो बरस के बाद, कई तो चार-चार बरस बोलते ही नही। इस प्रकार कोई भक्ति जल्द ग्रहण करता है, कोई देर से।

ईश्वर-दर्शन का अभ्यास

३ ईश्वर कहा है ? उसे कैसे पहचाना जाय ?

पहले ईश्वर कहा नही है यह देख लेना। ईश्वर अमगलता मे नही, वह निर्मल है, मगल है। वह निर्दयता मे नही है, वह दयालु है। इसलिए जो मगलमय है, दयामय है उसका सग्रह करना। तदितर छोड देना। जैसे आदमी कचरा सोना सगृहीत करता है, वैसे जहा-जहा ईश्वरीय गुणो का आविष्कार प्रतीत होगा, वहा-वहा से उसका सग्रह कर लेना। बच्चा अलकार झट उठा लेगा, सोने का पत्थर फेंक देगा। पर सुनार दोनो का मूल्य समान जानता है। इस प्रकार ईश्वर का परिचय पाने से दृष्टि सूक्ष्म हो जाती है और नव गन्दगी मे भी ईश्वर की झाकी मिल जाती है। वह गदगी नही, खाद है, मामूली खाद नही, सोनखाद है। यह ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार धीरे-धीरे सर्वत्र ईश्वर-दर्शन होता है। वह क्या थोडे ही मदन म्यूजियम मे है ? वह सर्वत्र विद्यमान है। उसे देखना सीखने की चीज है। उसका समग्र दर्शन सम्भव नही। वह विश्वरूप हम पचा नही पायेंगे। कुन्ती को सूर्य ने दर्शन दिया, पर वह उसे बरदाश्त नही कर सकी। अर्जुन को विश्वरूप का दर्शन कराया। वह डर गया। कहने लगा, मुझे चतुर्भुज रूप दिखाओ।

इस प्रकार जहा-जहा ईश्वर का आविर्भाव दिखाई देता है वहां-वहा मे उसे इकट्ठा करना चाहिए और इस तरह सब ईश्वरमय देखना सीख लिया जाय।

ईश्वर स्वयंभू क्यों ?

४. ईश्वर स्वयंभू कैसे ? उसे स्वयंभू क्यो कहा जाय ?

सत्य का मूल उद्गम सत्य होगा या असत्य। तीसरा कुछ हो नही सकता। अब यह नही कहा जा सकता कि सत्य का उद्गम असत्य है। असत्य से सत्य की उत्पत्ति नही होती। तो सत्य का मूल सत्य ही होगा। एक सत्य का मूल दूसरा सत्य, उसका तीसरा सत्य, इस प्रकार मानते चले जाय तो अन्त कहा होगा ? एक हरिदास था। कीर्तन के सिलसिले मे उसने कहा—सत्यभामा का पिता सत्राजित् था। तब एक श्रोता उठ खडा हुआ और बोला—आपने सत्यभामा के पिता का नाम बताया। पर उसके बाप का नाम क्या था ? उसपर वह हरिदास बोला—उसका नाम अठराजित्, उसका उन्नीसजित् आदि-आदि। उसी प्रकार यह हनुमान की पूछ बढ़ती ही जायगी। लेकिन विशेष का उद्भव सामान्य से होता है, न कि सामान्य का विशेष से। 'गोत्व' सामान्य है। पर काली गाय, सफेद गाय, उसका विशेष है। विशेष अल्प और सीमित रहता है। गोत्व व्यापक है, बडा है। वह जाति है। इसी प्रकार से सत्ता-सामान्य से सद्विशेष उद्भूत होता है। पर सत्ता-सामान्य किसीसे उद्भूत नही होता। अगर माना जाय कि वह उद्भूत होता है तो वह परपरा अनत बन जायगी। उसमे कल्पना-गौरव के दोष की गुजाइश होगी। इसलिए परमेश्वर, जो सत्तादि सामान्य है, स्वयभू कहलाता है। स्वयभू याने स्वत. वर्तमान, स्वत सिद्ध।

ईश्वर का वैषम्य तथा निर्घृणता

५. ईश्वर किसीको भक्ति देता है, किसीको नही देता; और जिसे भक्ति देकर अपनाता है उसे भी दु.ख-कष्ट पहुचाता है—सो कैसे ?

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

ईश्वर समान है। न किसी पर कृपा करता है, न किसीको कष्ट देता है, अग्नि की भांति, जो उसके पास जाता है उसे उष्णता देता है। जो दूर रहता है उसे नहीं देता। इसमें जैसे अग्नि में दयालुता या निर्दयता नहीं होती, वैसे ही ईश्वर में भी। तुकाराम जैसे भक्तवर को भी जो कष्ट सहने पड़ते हैं, वे विकास के लिए ही होते हैं। दमन देकर किसी को ईश्वर दुःख-मुक्त नहीं करता। उसे स्वतन्त्रता प्रदान करता है कि वह स्वयं पुरुषार्थ हासिल करे।

देवकृत चमत्कार

६ कुंवरबाईनुं नरसी मेहता का 'मामेरु' नरसी मेहता को ईश्वर ने सर्व प्रकार से द्रव्य-माहात्म्य देकर उसकी लड़की के दोहदपूर्ण किये। क्या यह चमत्कार नहीं है? देव इस प्रकार सहायता करता है?

यह भावना का विषय है। भक्त मानता है कि सबकुछ देव ही करता है। जो आस्तिक नहीं है वह ईश्वरीय कृपा की घटनाओं को आकस्मिक घटनाएं मानता है। सब घटनाओं का कार्य-कारण-भाव हम नहीं समझ सकते, इसलिए हम उन्हें आकस्मिक कहते हैं। वास्तव में वे सब यथा-स्थित होती रहती हैं। ईश्वरनिष्ठ की यह धारणा रहती है कि ईश्वर ही सबके मूल में होता है, सबकी प्रेरणा वही है। अतः वह कहता है कि वे घटनाएं ईश्वरकृत हैं।

मेरी ही बात देखिये—मैं वेदों का अध्ययन कर रहा हूं, वेदों पर कुछ लिखना चाहता हूं। यह सुनकर एक मित्र ने मुझे एक जर्मन भाषा का कोश तथा व्याकरण भेज दिया। उनकी इच्छा यह थी कि जर्मन भाषा में वेदों पर उत्तमोत्तम ग्रंथ लिखे हुए हैं, उन्हें मैं पढ़ लूं। 'इस बुढ़ापे में यह सब करने की ताकत आप में है या नहीं, फुर्सत है या नहीं इसका विचार करते हुए मैं इन्हें भेज रहा हूं। इनसे आप चाहे जैसा काम लें'—उन्होंने लिखा था। उसके बाद दो ही दिन बीते कि एक जर्मन लड़की मेरे पास आई और अठारह दिन रहकर चली गई। उसके साथ मैं हर रोज एक घंटा बिताता था। अब कोश-व्याकरण की सहायता से मैं पढ़ सकता हूं। जब वह गई तब मैं उससे बोला, "फिर जब आओगी तब हिंदी ठीक पढ़कर आओ।" उसने

कबूल किया, और कहा—"आप भी जर्मन भाषा का अध्ययन बढाइये !" इस घटना को चाहे तो आकस्मिक कहा जा सकता है। पर मुझ जैसे के मुह मे 'ईश्वरीय कृपा' के सिवा और क्या निकलेगा ?

ध्यान और क्रिया

७. आप कहते हैं कि कातते हुए ध्यान किया जा सकता है। वह कैसे किया जाय ? अरविंद स्वतत्र ध्यान बताते हैं, गाधीजी स्वतत्र कताई बताते है। आप कताई और ध्यान एकत्र बताते हैं। वह कैसे किया जाय ?

ध्यान के साथ सौम्य, परिश्रम-रहित क्रिया की जा सकती है। हम अभिषेक करते है। वह अखड क्रिया ध्यान के लिए पोषक बनती है। कताई करते वक्त जो धागा निकलता रहता है वह भी ध्यान की मदद करता है। हा, वह टूटे नही। कताई के समय ध्यान के साथ ही दृष्टि घूमती रहती है। इस कारण उसपर तनाव नही पडता। एकटक देखने से आखे थक जाती है। पर इस क्रिया मे नहीं थकती। कातते वक्त यह शरीरश्रम है, यह गरीबो से मिलाप है, आदि चिंतन किया जा सकता है। वैसा चिंतन या और किसी प्रकार का चिंतन न किया जाय तो वह ध्यान हो जाता है।

अध्ययन कब, कैसे, कौन-सा ?

८ अध्ययन कब किया जाय, कैसे किया जाय, कौन-सा किया जाय ?

रात को जो अध्ययन करते हैं उनके लिए तिगुनी प्रतिकूलता हुआ करती है, दिनभर की थकावट, पेट मे अन्न बोझ, और आखो को थकानेवाला जगमगाता दिया। इसलिए रात की पढाई अनुचित है। अध्ययन के लिए तीन समय अच्छे होते हैं—एक, नीद खुलते पर सवेरे, वामकुक्षी के बाद दोपहर, और बीच मे स्नान के उपरान्त। इन तीनो समय में शाति और उत्साह रहता है। प. नेहरू को काम के मारे समय नही मिलता। वह रात को १२-१ बजे सो जाते हैं। दोपहर को १॥ बजे पौनार के बुनकरो की भाति भोजन करते हैं और २॥ बजे फिर काम में लग जाते हैं। इस प्रकार उन्हे फुर्सत नही मिलती। तो भी सवेरे करीब एक घटा यौगिक क्रियाओं में बिताते हैं। इससे उनका अच्छा लाभ ही हुआ है। तीन इच तक पेट घट

गया है।

अध्ययन लंबा-चौड़ा न हो, पर गहरा रहे। एकाग्र होकर किया हुआ घंटे-आध घंटे का अध्ययन लंबे अर्से तक किये अनेकाग्र अध्ययन की अपेक्षा बहुत अधिक लाभकारी होता है। ४-६ घंटे गाढ़ी नींद और ८-१० घंटे करवटें बदलते रहना इनमें जो फर्क है, वही यहां भी है।

हम जो कार्य करते हैं, उसका अध्ययन किया जाय। उदाहरण के लिए तुम लोग भूदान-कार्य करते हो, तद्विषयक संपूर्ण साहित्य का अध्ययन, सब प्रश्नों का चिंतन ही तुम लोगों का कर्तव्य है। साथ ही चित्त-शुद्धि के लिए धार्मिक ग्रंथों का भी अध्ययन करना चाहिए। गीताई है, गीता-प्रवचन है, और भी अन्यान्य ग्रंथ हैं। अध्ययन से मन पावन होता है और नाम का चिंतन-मनन करने से व्यवहार शुद्ध हो जाता है।

: २६ :

बुद्ध का मध्यमार्ग

विनोबा—क्या भगवान् बुद्ध ने कहीं कहा है कि मैंने जो तपस्या की है, उसमें मेरी कुछ गलती तो नहीं हो गई?

मैं—मेरी पढ़ाई में ऐसा नहीं पाया गया है, तथापि अपनी तपस्या के अंत में जब उन्हें ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था तब उन्होंने विचार किया कि शायद मैं गलत मार्ग पर चल रहा हूं। समाधिसुख इस मार्ग से हासिल नहीं होता। बचपन में जम्बू वृक्ष के नीचे मुझे जो समाधिसुख प्राप्त हुआ था, वह घोर तपस्या के कारण नहीं था। और इस विचार के कारण उन्होंने फिर थोड़ा-थोड़ा अनाज खाना शुरू किया। साथ उनके पांच ब्राह्मण इस विचार से रहे थे कि यह ज्ञानी बन जायगा और इससे हमें भी ज्ञान प्राप्त हो जायगा। उन्होंने समझा कि यह सब पेट के पीछे पड़ गया और उन्हें छोड़कर मृगदाव, याने आज के सारनाथ, जाकर रहे। इस प्रकार से स्पष्ट है तपस्या का मार्ग भगवान् बुद्ध ने छोड़ दिया।

विनोबा—पर उनसे कहा—'खन्ती परमं तपो तितिक्खा, [illegible]

शयनासनं', अर्थात् निवास गांव के बाहर रहे, निद्रा भी बाहर ही। इसमें क्या अभिप्रेत है ? और क्या 'विग्गं पमति संवरं' भी शरीरहिनता का लक्षण है ? गांव में रहकर मोक्ष नहीं, बिना भिक्षु बने मोक्ष नहीं। इसका मतलब यही कि बुद्ध का मार्ग माध्यम मार्ग नहीं।

मैं—बुद्ध का मार्ग अगार-धर्म नहीं। उसका मध्यममार्ग गृहस्थ-धर्म भी नहीं। वह है भिक्षुओं का, श्रमणों-ब्राह्मणों का मार्ग। तो भी उन श्रमणों ब्राह्मणों में एकान्तवादी, याने इस या उस छोर तक जानेवाले, लोग थे। पर बुद्ध वैसा नहीं था। वह उन दो छोरों के बीच था। इसी मध्य को ही उसने सम्यक् कहा है। वह सिर्फ बुद्ध नहीं था, सम्यक् संबुद्ध था।

हावनूर के मार्ग पर,
ता० ६-१२-५७

: २७ :

बुद्ध और महावीर

भिन्न दर्शन, भिन्न आचार

मैं—कल आपने कहा था, 'क्या बुद्ध ने अपनी तपस्या का निषेध किया है ?' इस विषय मे निषेध तो कही मैंने पढ़ा नही तो भी उन्होने उस मार्ग का त्याग जरूर किया था। उसके बाद भी उन्होंने तपस्या-मार्ग को अनुकरणीय नही बतलाया। इसके अलावा उन्होंने अपने शिष्यो को भी वैसा तप करने का आदेश नही दिया। पर महावीर की बात अलग थी। ज्ञान-प्राप्ति के पहले भी वह तप करते थे और बाद मे भी तप करते रहे। उनका उपदेश भी कठोर तपस्या का है। महावीर ने इतने उपवास किये हैं कि उनकी सख्या छ-साढ़े छ वर्षों की होगी। 'सवर' और 'निर्जरा' उनके आदर्श शब्द हैं। इस अन्तर की जड़ मे, मुझे लगता है, उनके दर्शनो की भिन्नता ही है।

बुद्ध मानवतावादी, महावीर अहिंसावादी

विनोबा—ज्ञान-प्राप्ति के पूर्व की तपस्या समझी जा सकती है। पर ज्ञान-प्राप्ति के बाद भी अगर महावीर तपस्या करते रहे हों तो उसका कारण एक तो उन्हें ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ हो, या वह तपस्या को ही मोक्ष मानते रहे हो। सब मानते हैं कि वह ज्ञानी थे। इसका अर्थ यही कि वह तपस्या को ही मोक्ष मानते थे। यह तप कारुण्य-मूलक है। भगवान् बुद्ध भी करुणावतार थे, पर दोनो की धारणाओं में अन्तर था। भगवान् बुद्ध मुख्यत मानवतावादी है, महावीर भूतमात्र के लिए आत्यतिक करुणा की प्रेरणा लिये हुए है। यह करुणा यहातक जाती है कि मनुष्य का जीवन भी हिंसा ही है। इसलिए उनकी धारणा है कि खाना भी पाप-रूप है। जितना कम खाया जाय उतनी हिंसा भी कम होगी, इस विचार से यानी प्राणिमात्र के बारे में सूक्ष्मातिसूक्ष्म करुणा से वह यथासभव निराहार ही रहते है।

सगुण या निर्गुण करुणा

बुद्ध ने यज्ञीय हिंसा का निषेध किया और कहना होगा कि उन्होने उसमें सफलता पाई। आज भारत से यज्ञीय हिंसा उठ गई है। महावीर के समय में भी वह विद्यमान थी, पर ऐसे किसी स्थूल विषय में उन्होंने दखल नहीं दिया। वह केवल शुद्ध अहिंसा का उपदेश देते तथा तदर्थ निरन्तर तपश्चर्या करते रहे और इसीमें सन्तुष्ट रहे। महावीर की यह करुणा निर्गुण थी। मेरी राय में महावीर की भूमिका उच्चतर है। मेरे मन का झुकाव उस ओर है, पर मैंने बुद्ध के मार्ग का अवलब किया है। कुछ कार्य हाथ में लेकर करुणा का प्रचार करना ही वह मार्ग है। बुद्ध की दया व्याकुल दया है।

बुद्ध का करुणा-साक्षात्कार

जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि मानवी दु खो के शल्य ने उनके हृदय को बेध दिया था और उस शल्य को उखाड फेंकने पर वह उतारू हो गये थे। तपस्या करते हुए बुद्ध को सुजाता हर रोज देखा करती थी। उनकी एक-

एक पसली दिखाई देने लगी, आंखें अन्दर धंस गईं, शरीर पर शिराओं का जाल उभर आया। यह सब वह हर रोज देखा करती थी। उसकी आंखें लगी हुई थी कि वह कब आंखें खोलते हैं। चालीस दिन के अनशन के बाद ज्ञान प्राप्त करके जब उन्होंने आंखें खोली तब सामने ही पायस की कटोरी लेकर खड़ी सुजाता मूर्तिमती करुणा के रूप में दीख पड़ी। वह बुद्ध की बोधि, वही सबोधि। तपस्या बुद्ध ने की, ज्ञान का साक्षात्कार हुआ सुजाता को। उसे देख बुद्ध की आंखें खुली, करुणा का साक्षात्कार हुआ। दुनिया के दुःख पर वही अचूक दवा है। उसे लेकर उन्होंने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया।

बौद्ध और जैन धर्मों का अन्तर

बुद्ध का धर्म करुणा-मूलक, पर वैराग्य-प्रधान है। उनका क्षेत्र मानवता है। जैनो का धर्म भी करुणा-मूलक है सही, पर उसका क्षेत्र मानवता नहीं, समूचा जीव-जगत् है। उसमें न विह्वलता है, न खलबली। उसमें है तटस्थता।

सत्य प्रधान है या अहिंसा ?

एक बार एक जैन सज्जन से चर्चा छिड़ गई। उनसे मैंने कहा, "अहिंसा ठीक ही है, पर सत्य का भी कुछ विचार हो ? चीटियों को चीनी दी जाती है, पर व्यापार-व्यवहार मे धोखे-बाजी, झूठ, मक्कारी चलती है। यह क्या ?" उन्होने कहा, "अहिंसा ही धन है। सत्य को छोड़कर भी अहिंसा का पालन करना चाहिए। गाधीजी की अहिंसा और हमारी अहिंसा अलग-अलग है। गाधीजी सत्य को ही परम धर्म मानते हैं, हम 'अहिंसा परमो धर्मः' मानते हैं। उसके लिए कभी झूठ भी बोलना पड़े तो कोई हर्ज नहीं। देखिये न महाभारत में भी अपवाद बताये गए हैं।" सत्य का सीधा विरोध करनेवाला और अपना जैनशास्त्र छोड़कर महाभारत का आधार उद्धृत करनेवाला जैन था वह।

न हि सत्यात् परो धर्मः

पर हम तो सत्य को ही परम धर्म मानते हैं। कहते हैं—'न हि सत्यात् परो धर्मः।' उसीमे से सब साधना निकलती है और उसीमें परिसमाप्त हो जाती है। वही तारक है। यहां एक चोर का किस्सा याद आता है।

एक बार एक साधु ने एक चोर को नसीहत दी कि तुम चोरी करते हो, ठीक ही है। चलने दो तुम्हारा काम। लेकिन उसके साथ एक बात करो। व्रत लो कि कभी झूठ नहीं बोलूगा। चोर को बड़ा आनन्द हुआ कि साधु महाराज ने मेरी जीविका को छुआ नहीं। उसने कहा, "महाराज, मैं आपके उपदेश के अनुसार अवश्य चलूगा।" उस रात को चोरी करने वह बाहर चल पड़ा। राजा भेष बदलकर टहल रहा था। राजा ने पूछा, "कहां जा रहे हो?" अपने निश्चय के अनुसार उसने सच कहा, "चोरी करने।" "कहां?" "राजमहल मे।" राजा बोला, "तो मुझे भी साथ ले चलो। मैं पास ही रहता हू।" "हा" कहकर चोर गया। तिजोरी खोली। सामने ही तीन हीरे नजर आये। उनमे से दो लेकर वह लौट पड़ा। राजा के पास आया। बोला, "वहा तीन हीरे थे, पर बटवारे मे कठिनाई होगी, इस विचार से मैं दो ही लाया हू। यह लो एक।" यह कहकर वह चला गया। राजा ने उसका नाम और पता पूछ लिया था। सवेरे प्रधान राजा के पास चोरी की खबर लेकर पहुचा। कहा, "केवल तीनों हीरे गायब हैं।" प्रधान ने सोचा—दो हीरे गायब हैं, गलती से एक रह गया है। उसे अगर मैं हड़प लू तो कौन जान सकता है? इस विचार से उसने वह हथिया लिया था और राजा से कह रहा था कि तीनों गायब है। राजा ने चोर को बुला भेजा। उसने राजा के सामने प्रधान से कहा, "निकालो तीसरा हीरा!" प्रधान को देना पड़ा। राजा ने प्रधान को जेल भेज दिया और चोर को अपने खजाने का अधिकारी बनाया।

होसरित्ती के मार्ग पर,
१०-१२-५७

: २८ :

कणिका–३

अपना काम

मैं—जिस क्षेत्र में हम काम कर रहे हैं, उसे छोड़कर आना पड़े तो क्या किया जाय?

विनोबा—मां बालक को छोड़ कब जाती है? जब कोई प्रतिनिधि उसकी हिफाजत के लिए मौजूद हो तब। वैसे ही जबतक उस कार्य की जिम्मेदारी सम्हालनेवाला नहीं मिलता तबतक छोड़ जाना असुविधा होगा।

पर जनता की सेवा करते रहना ही हमारा काम नहीं। हमारी सेवा की आवश्यकता न रहे, लोग अपने-अपने काम कर लेते हैं, ऐसा होना चाहिए। यही हमारा काम है। एक सेवक के स्थान पर सेवक-ही-सेवक हैं, एक दूसरे की सेवा, गाव की सेवा, समाज की सेवा हो रही है। यह स्थिति अभीष्ट है। उससे हमारा काम रहेगा ही नहीं। 'कापुराची वाती उजलली ज्योति। ठाई च समाप्ति झाली जैसी।' अर्थात् 'कपूर की बाती बनाई जला दी गई। उसने प्रकाश दिया और अपने में विलीन हो गई।'

गाधीजी का उत्तराधिकारी

मैं—गाधीजी ने जवाहरलालजी को अपना उत्तराधिकारी घोषित करके बड़ी गलती की है। हमारी धारणा है कि वास्तव में आप ही उनके सच्चे उत्तराधिकारी हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि गाधीजी राजनैतिक नहीं, आध्यात्मिक पुरुष थे, और आपकी भी यही सम्मति है। इस बारे में आप क्या सोचते हैं?'

विनोबा—गाधीजी की दृष्टि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र की ओर थी। वह उनका कार्य शेष था। उनकी अपेक्षा थी कि जवाहरलालजी उस कार्य को अपनायेंगे। इस दृष्टि से उन्होंने जवाहरलालजी को अपना वारिस जाहिर किया। यह है मेरी धारणा। वह कार्य जवाहरलालजी अपने ढंग से कर रहे हैं। यह स्पष्ट है कि वह खादी-ग्रामोद्योग की तरफ भिन्न दृष्टि से

देखने है। गाधीजी इस बात को जानते थे। आर्थिक विषयों का तरफ देखने की दृष्टि उनकी अपनी अलग है, तथापि आखिर मे हमारी मुलाकात होगई, उस वक्त से मैं मानता हू कि ग्रामोद्योग विज्ञान-विरोधी नही, यह विचार उन्होंने ग्रहण किया है। यह जो कहा गया है कि बापू को नही चाहिए था कि वह जवाहरलालजी को अपना वारिस बनाते, यह ठीक नही। बापू का वह तरीका था। मैं तो उनका था ही। पर अपने उत्तराधिकारी के नाते जवाहरलालजी पर उन्होंने यक़ीन रखा है। नि सन्देह वह उस विश्वास के योग्य ठहरेंगे। अगर जवाहरलालजी की दृष्टि गाधीजी की दृष्टि से भिन्न है तो यह भी ध्यान मे लीजिये कि मेरी भी दृष्टि उनकी दृष्टि से भिन्न है।

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही

प्रश्न—एक बार हमारा एक मित्र विषम ज्वर से बीमार हुआ। पूरे ४२ दिन वह बीमार रहा। उस बीमारी ने उसके दिमाग तथा जबान पर असर डाला। सीखी बातें वह याद नही कर पाता था। अग्रेजी आदि सब-कुछ वह भूल गया। बडी मुश्किल से वह बोल सकता था। जो कुछ वह बोल सकता था वह केवल मराठी, उसकी मातृभाषा मे। इससे जान पडता है कि मातृभाषा की छाप कितनी गहरी होती है।

उत्तर—शिक्षा के माध्यम के बारे मे मत-भिन्नता है। शिक्षा-शास्त्र की दृष्टि से मातृभाषा ही शुरू मे अखीर तक शिक्षा का माध्यम हो, यह मेरी राय है। दादा धर्माधिकारीजी ने मुझे समझाने का प्रयत्न किया कि हिन्दी उच्च शिक्षा मे माध्यम रहे। मेरा मत-परिवर्तन वह नही कर सके। तब उन्होंने विनोद बुद्धि से कहा, "मातृभाषा का मेरा अध्ययन आपके जैसा गहरा नहीं।" पर कहना चाहिए कि हालाकि दादा मुझे नहीं समझा सके, तो भी मुरारजीभाई ने मुझे अनुकूल बना लिया। वह बोले—"कॉलिज-प्रवेश से पहले विद्यार्थी का मातृभाषा-विषयक अध्ययन पूर्ण होना चाहिए। इस अध्ययन के साथ एक अनिवार्य विषय के तौर पर वे हिन्दी का भी अध्ययन करें। इस हालत मे क्या हर्ज है हिन्दी को उच्च शिक्षा मे माध्यम बनाने मे? विद्यार्थी का मातृभाषा का ज्ञान इस कारण से

आदि अनेक योगी पुरुष रुग्ण होकर चल बसे, यह इतिहास है।

विनोबा—योग दो प्रकार का है—१. द्वंद्व में चित्तसाम्य या सुख-दुःख समता और २. योगयुक्त जीवन या नियमित आहार-विहारादि। पहला योग उच्च है।

शंकराचार्य

पूर्व-जन्म के योगी शंकराचार्य अवशिष्ट कार्य पूरा करने अवतीर्ण हुए थे। वह कार्य करते हुए उन्होंने कभी खाने-पीने की परवा नहीं की और अपना कार्य झट पूरा करके वह चल दिये। छोटी उम्र में विद्याध्ययन तथा आगे धर्म-कार्य के लिए घूमते रहे। ऐसी अवस्था में खाने-पीने का प्रबन्ध ठीक कैसे हो सकता? फलस्वरूप शरीर रोगी हो गया तो आश्चर्य क्या?

रामकृष्ण

रामकृष्ण भी योगी नहीं थे। योग में भावावेग के लिए स्थान नहीं। वह तो हमेशा भावाविष्ट हुआ करते। उससे आयु का क्षय होता है। डाक्टरों ने कहा था कि अंत में उनको बीमारी का प्रकोप होगा और उनकी मृत्यु होगी। पर रामकृष्ण बेफिक्र रहे। रोग के बावजूद वह आनंदी रहे।

अरविंद

अरविंद के बारे में आपत्ति उठाई जा सकती है। उनका योग दूसरे प्रकार का था। नियमित आहार-विहार जिस प्रकार का आवश्यक है, वैसा उन्हें प्राप्त था। इस योग-मार्ग से मानवदेह अमर हो सकता है, यह उनकी धारणा थी। लेकिन फिर भी वह रुग्ण होकर काल वश हुए, अर्थात् उनकी साधना अपूर्ण रही। पर उनके भक्त ऐसा नहीं मानते।

तिलक

तिलक पहले प्रकार के योगी थे। वह समत्वयुक्त थे। बुढ़ापे में तिलकजी को छः साल की लम्बी सजा भुगतनी पड़ी। सब लोगों को इसका बड़ा रंज हुआ। उन दिनों वह सजा अत्यन्त भयानक समझी जाती थी पर शाम को तिलकजी मोटर में दूर ले जाये गए। मोटर चलानेवाला था एक कट्टर अंग्रेज, जो तिलकजी से दिल से नफरत, गुस्सा करनेवाला था। लेकिन तिलक, सोने का समय आते ही, आठ बजे गहरी नींद सो गये

अधूरा नहीं रहेगा। आगे भी उसका विशेष अध्ययन किया जा सकता है।" उनकी यह दलील मुझे विचार-योग्य जचती है। फिर भी शिक्षा-शास्त्र की दृष्टि से मातृभाषा ही माध्यम रहे, यह मेरा मत ज्यों-का-त्यों है।

अलावा इसके हिन्दी को माध्यम के रूप में स्वीकार करने में अनेक बाधाएं हैं। प्रमुख अड़चन यह है कि उसके साहित्य की अपेक्षा तमिल, मराठी, बंगला भाषाओं का साहित्य अधिक समृद्ध है। वे भाषाएं हिन्दी को माध्यम बनाने में आपत्ति उठायेंगी। राजाजी कहते हैं, हिन्दी को आवश्यकता है कि वह स्वयं स्कूल में जाय। उनका कहना है कि उसे समर्थ और सम्पन्न बनने दें।

रद की हुई किताब 'भगवान्'

किशोरलालजी मशरूवाला ने 'ईश्वर' पर 'भगवान्' नामक किताब लिखी थी। उसमें ईश्वर के सत्-चित्-आनन्द रूप को लेकर हरेक पद का तार्किक विवेचन उन्होंने किया था। उसकी पाडुलिपि उन्होंने अभिप्रायार्थ मेरे पास भेजी थी। मैंने उसे पढ़ा और कुछ प्रश्न पूछे। इस कारण उन्होंने उसे प्रकाशित करने का विचार छोड़ दिया। मुझे लगता है कि उन्होंने उस किताब को फाड़ डाला हो। उसके बाद जब वह मुझसे मिले तब बोले, "यदि मैं विनोबा को नहीं समझा पाता तो औरों को क्या समझा सकता हूं? इस विचार से मैंने उसे रद कर दिया।"

होसरित्ती के मार्गपर,
१०-१२-५७

: २६ :

योग और रोग-वियोग

योगी और रुग्ण मरण

मैं—आपसे और बापू से बार-बार सुना है कि ...

मरते पाते। लेकिन यह कहावत ठीक है? शंकराचार्य.

वेद का कवच

विनोबा—वेद की दृष्टि समग्र है। वह एक परिपूर्ण योजना है। वेद में कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्ति-योग पाया जाता है। ज्ञान तो है ही। पर वेद पर एक कवच है। उसे हटाकर देखे बिना उसका गूढ़ भाव प्रकट नहीं हो पाता। 'छंदांसि यस्य पर्णानि' वेद का रहस्य मंत्र के कवच में निगूढ़ है। गीता का कवच युद्ध है। तिलकजी उसे ऐतिहासिक घटना मानते हैं तो गांधीजी रूपक। उस कवच का भेद किये बिना गीता का रहस्य हाथ नहीं आता।

वैदिक ध्यानयोग

ब्राह्मण-ग्रंथों ने कर्मकांड पर बल दिया। फल यह हुआ कि आगे चलकर आरण्यकों तथा उपनिषदों ने ज्ञानवाद को वेद का सार, वेदान्त, मानकर उसका प्रतिपादन किया। वेद के ध्यान-उपासनायोग का प्रणेता हिरण्यगर्भ है। वैदिक ध्यानयोग लोगों की समझ में नहीं आता। इन्द्र, मित्र, वरुण इत्यादि ध्यान ही हैं। गीता का विभूतियोग और विश्वरूपदर्शन-योग वेद से ही ग्रहण किया है। वेद परिपूर्ण जीवन-दर्शन है। वेद में जितने आध्यात्मिक विविध अनुभव प्रकट हुए हैं, उतने और कहीं भी नहीं मिलते। संत तुकाराम में भी जितने अनुभव पाये जाते हैं, उतने अन्यत्र नहीं मिलते। सो भी वेद के अनुभव, भूमिकाएं, चिंतन अति सूक्ष्म हैं। मां कहा करती—"जले वराहं, अरण्ये नारसिंह, श्रीराम सर्व कर्मसु।" उसी प्रकार वैदिक ध्यानमंत्र विशेष अर्थ धारण करते हैं। भिन्न-भिन्न देवता विशिष्ट ध्यान-प्रतीक हैं। आज हम प्रेम, दया, करुणा आदि का आवाहन करके उनका ध्यान करते हैं। वेद में यही पाया जाता है। 'मित्र' कहने से परमात्मा सर्व भिन्न रूप में व्याप्त है यह ध्यान-प्रतीक है। 'गौरसि गव्यते, अश्वः अश्व यते भवान्'—'हे इन्द्र, हे परमात्मन्, तुम्हीं गौ हो, गोरूप से हमें दूध दे हो, तुम्हीं अश्व हो, अश्व बनकर पीठ पर हमें वहन करते हो, और इ स्थान पर पहुंचाते हो।' यह वेद में कहा है। कई लोग इसका अनुवाद क हैं—तुम गाय मांगनेवाले को गाय देते हो, घोड़ा मांगनेवाले को घो इस प्रकार वेद अति सूक्ष्म अर्थ धारण करते हैं। वेद-दृष्टि गूढ़ है।

वेदों की महत्ता

कतिपय लोग वेदों में इतिहास खोजते हैं, कई भूगोल, खगोल आदि देखते हैं। पर वेदों की महत्ता इन बातों में नहीं। दस हजार साल पहले की [illegible] मिल जाय तो इतिहास की दृष्टि से उसका बड़ा मूल्य होगा। पर वेद की महत्ता आध्यात्मिक ज्ञान की दृष्टि से है। 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः।' वेद और गीता में ऐसे वचन हैं। इसी दृष्टि से उनका अध्ययन इष्ट है। अन्यान्य दृष्टियों से अगर कोई वेदों से कुछ निकाले तो हर्ज ही क्या? पर वह वेदों का सार नहीं होगा।

वैदिक भाषा की सूक्ष्मता

वैदिक धातुएं और शब्द सूक्ष्म अर्थ का वहन करते हैं। सस्कृत के शब्दों में भी सूक्ष्मता है, पर वैदिक शब्दों में अधिक सूक्ष्मता है। तुमने लिखा था कि अंग्रेजी में भी किसी हद तक इस प्रकार की सूक्ष्मता और व्युत्पत्ति पाई जाती है, 'सेसीम एंड लिलीज' नामक रस्किन की किताब में वह नजर आती है, मिल्टन के काव्य में भी व्युत्पन्न विद्वत्ता के दर्शन हो जाते हैं। लैटिन भाषा में भी सूक्ष्म अर्थ विद्यमान है। पर हर शब्द की व्युत्पत्ति धातु से है, यह सस्कृत की दृष्टि अन्य भाषाओं में उस कदर नहीं पाई जाती। लैटिन और अरबी भाषा में ऐसी धार्मिक दृष्टि तथा शक्ति है। उदाहरणार्थ 'धा' से धान्य। अंग्रेजी में नाम-धातुएं बहुत हैं, पर सस्कृत की यह दृष्टि रही है कि हर शब्द का व्युत्पादन धातु से किया जा सकता है। धातु ही शब्द-मात्र के मूल में है। धातुओं के समान कई सज्ञाएं भी मूलतः सिद्ध मानी जा सकती हैं, पर सस्कृत की वह दृष्टि नहीं।

वेद इतिहास-ग्रंथ नहीं

वेदों में कालातीत विचार ग्रथित हैं। केवल दिक्कालावच्छिन्न विचार ... तो यही आक्षेप उठाया जाता है कि हमने इतिहास नहीं ...ने इतिहास इसलिए नहीं लिखा कि हमने उसे कभी महत्त्वपूर्ण ... क्या वेद 'भाऊसाहब की बखर' के समान है? अगर वह वैसा ... रट-रटकर कंठस्थ कर डालते। कहते हैं कि वेदों में आर्य,

और द्रविड़, पणि और देव के बीच के विग्रह का इतिहास है। होगा भी शायद, पर वेद उसके लिए नहीं है।

उपनिषदों ने वेदों को बचाया

मीमांसकों ने वेदों को केवल कर्मकांड मान लिया। उसमें से उपनिषदों ने वेदों को उबारा। वेदों को गौणत्व प्रदान किया। गीता ने भी वेदों को वैसा ही गौणत्व दिया है, क्योंकि गीता वेदान्त ग्रंथ है, ब्रह्मविद्या है। अंत में वेदों का सन्यास भी उपदिष्ट है। 'अत्र माता अमाता भवति, पिता अपिता, वेदा अवेदा' आदि 'वेदानपि सन्यसति।' वह जो आत्मज्ञान है, वही वेदों का सार है, वेदान्त है। वेद इसीमें परिसमाप्त होते हैं।

ग्रामदान के शास्त्र के लिए

इस दृष्टि को लेकर ऋग्वेद की दस हजार ऋचाओं में से एक हजार ऋचाओं का चुनाव करना है। दूसरा यह भी विचार है कि एक समूचा मंडल लेकर उसपर कुछ लिखूं। वेदार्थ कैसे निकाला जाता है, और मेरी दृष्टि उस विषय में कैसी है आदि बातें उसमें प्रकट हो जायगी। उपनिषदों पर 'उपनिषदों का अध्ययन', 'ईशावास्यवृत्ति' गीता पर 'गीताई' तथा 'गीताप्रवचन' प्रकाशित हुए हैं। भागवत का सचयन हुआ है। वेदों की सेवा करना चाहता हूं। अवसर की ताक में हूं। धम्मपद तैयार ही है। कुरान में से भी चयन करने की चाह है। उससे सब लोगों को नित्य-पठन के लिए कुरान का सार मिल जायगा और उससे परिचय बढ़ेगा। बाइबिल में चयन नहीं होगा, क्योंकि वह ग्रंथ सुपरिचित है। शंकराचार्य के प्रकरणग्रंथों से 'गुरुबोध' बना है। उनके भाष्य से भी चयनिका बनाने का विचार है। मराठी संतों के चयन तैयार है। रामदास से भी चुनाव जल्द किया जायगा। तुकाराम का सार-ग्रंथ बन गया है, पुराना चयन उपलब्ध हुआ है। यह सब चयन भूदान-ग्रामदान विचार को पूर्णता प्रदान करेंगे। भूदान-ग्रामदान का शास्त्र-ग्रंथ बनाना है।

सिद्दापुर के मार्ग पर,
११-१२-५७

: ३१ :

पद-यात्रा की झांकी

चर्चा-रस

आज रास्ता कच्चा ही था। अतः जयदेव ने सुझाया कि पर्याप्त प्रकाश के फैलने तक चर्चा शुरू न की जाय। हालांकि विनोबाजी चर्चा चाहते थे, तो भी मैंने चर्चा नहीं शुरू की। परसों तो बीच में दो बार जयदेव ने बताया कि रास्ता खराब है, चर्चा बाद में की जाय, पर विनोबा ने कोई जवाब नहीं दिया और चर्चा जारी रखी। वह जब तीसरी बार बोला, तब विनोबा बोले—

"चर्चा के चलने पर भी मार्ग तय करने में कोई रुकावट नहीं आती।" यह कहकर वह मेरे साथ बोलते ही रहे। विषय अतीव रसप्रद था। हर रोज सवेरे भी जो यह हमारी चल-चर्चा चलती है वह बड़ी दिलचस्प होती है। यद्यपि हम दो ही बोला करते हैं, तो भी और लोगों को यह अतीव भाती है।

हेसरूर का स्वागत और सभा

आज रास्ते में एक गांव पड़ा, जिसका नाम हेसरूर है। वहां श्री भीमाचार बटवी ने बड़ा सुन्दर आयोजन किया था। समूचा गांव संमार्जित किया गया था, बंदनवार आदि से सजाया गया था। स्त्री-पुरुष और बच्चे स्नानादि से निवृत्त होकर सुन्दर वस्त्र पहने सभा में इकट्ठे हो गये थे। सभास्थान में विनोबा के लिए उच्चासन की आयोजना की गई थी। तीस-चालीस महिलाएं आरती के थाल लिये कतार में खड़ी थीं। थाल में दो-दो फूल-बत्तियां जल रही थीं। मंगल कलश भी थे। कलशों में पानी और नागवल्ली दल थे। अक्षत तथा कुंकुम साथ थे। वह एक दीपावली ही स्वागत वितरण कर रही थी। एक ओर स्त्रियां, दूसरी ओर पुरुष, और उनके साथ होड़ करती हुई आसमान में तारका-मंडली दिखाई दे रही थी। विनोबा के सभा-स्थान पर पधारते ही स्त्री-पुरुषों ने मिलकर 'जय जगत्' का नारा बुलंद करके । स्वागत किया। फूलों की तथा सूत की मालाएं अर्पित की गईं। वह ५७। मनोहारी था। साधु-संत जब घर आते हैं, तभी दिवाली-दशहरे

के सच्चे त्योहार होते हैं, इस आशय की मराठी कहावत का मानो वह प्रत्यक्ष प्रमाण था। विनोबा ने खड़े-खड़े ही उनको भूदान का संदेश थोड़े में सुनाया। कहा—

"अगर सबको खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता, शिक्षा-दीक्षा मिलनी चाहिए तो ग्रामदान की आवश्यकता है। हवा और पानी पर जिस प्रकार किसीका एकाधिकार नहीं, किसीकी मालकियत नहीं, वैसा ही जमीन के बारे में होना चाहिए। हवा और पानी के समान ही जमीन भी भगवान् की देन है और इसलिए सबको समान रूप से मिलनी चाहिए।"

इसके अनन्तर फिर 'जय जगत्' का घोष हुआ और यात्रा आगे बढ़ी।

पाठशाला में पड़ाव

८॥ से ९ के लगभग हम शिगली पहुंच गये। शिगली एक अच्छा गांव है, जिसकी आबादी पांच हजार है। एक मिडिल स्कूल में हमारा पड़ाव रहा। प्रबन्ध ठीक था। इधर अधिकांश स्थानों में हमारा पड़ाव पाठशाला में ही रहा करता है। चालीस-पचास आदमियों के एक साथ ठहरने के लिए अन्य जगह कहां ? पाठशाला अक्सर गांव के बाहर या एक छोर पर रहती है। इसमें खुली जगह और अहाता अक्सर हुआ करता है।

मुकाम पर

मुकाम पर पहुंचने के बाद पहले हाथ-मुंह धोकर नाश्ता किया जाता है। नाश्ते के लिए मूंजी और कषाय मिलता है। यह कषाय मुझे बड़ा अच्छा लगा। धनिया, गुड़, सोंठ और थोड़ा दूध मिलाकर यह कषाय बनता है। दक्षिण में सर्वत्र इसका प्रचलन है। चाय आदि पेयों के बदले पीने लायक यह चीज है। इसके बाद सामान का करीने से लगाना, स्नानादि से निवृत्त होना आदि काम रहता है। स्नान और कपड़ों की धुलाई के लिए अनेक बार नदी, तालाब, कभी-कभी कुए का सहारा लेना पड़ता है। होलरिक्ती हम वरदा नदी पर नहाने गये थे। इधर अनेक गांवों में तालाब पाये जाते हैं, वैसे पानी की कमी ही है। स्नानादि से निबटकर और कपड़े सुखाकर जो समय बच जाता है, उसे लेखन-पठनादि के काम में लाया जा सकता।

वर्ग और पाठ

११ बजे विनोबा कार्यकर्ताओं का वर्ग चलाते हैं। हाल में सर्व-सेवा-संघ की ओर से हर प्रांत में वहां के आठ-दस सेवकों की टोली एक हफ्ते के लिए शिक्षार्थ बुलाई जाती है। यह उपक्रम बड़ा अच्छा है। उसमें दोनों ओर लाभ होता है। विनोबा कार्यकर्ताओं से परिचय पाते हैं, कार्यकर्ता लोग अपनी शंकाओं का समाधान करा ले सकते हैं। इस वर्ग में विनोबा अत्यंत मौलिक विवेचन किया करते हैं। वर्ग के अनंतर तुलसी रामायण तथा गीताई का पाठ चलता है। रामायण का दोहान्त या छन्दान्त हिस्सा गाया जाता है। सामान्यतया इस हिस्से में दस-बारह चौपाइयां और एक दोहा और कभी-कभी एकाध छंद हुआ करता है। गीताई का पारायणकाल २१ दिन का रहता है। दूसरे, ग्यारहवें और अठारहवें अध्याय के दो-दो हिस्से करके हर हिस्सा एक दिन पढ़ा जाता है। बाकी पंद्रह अध्यायों के लिए पंद्रह दिन, इस प्रकार का क्रम रहा करता है। गोपुरी में २५ दिन का पारायणकाल रखा है। उसके बदले यह २१ दिन का पारायण शुरू करने लायक है। पहले एक समय वह था भी। गोपुरी में प्रातः प्रार्थना में बहुत ही कम लोग आते हैं। अत: यहां की भांति (रामायण) गीताई पाठ को सवेरे की प्रार्थना से हटाकर दोपहर कताई के वक्त रखा जाय, यह विचार मन में उठता है। १२ बजे यह कार्यक्रम खत्म हो जाता है। कभी विनोबा रामायण के बारे में बोलते हैं।

तुलसीरामायण में अन्वेषण

परसों विनोबा ने तुलसीरामायण के बारे में अपनी खोज बताई। जहां-जहां रामायण में सीता और राम का वियोग है, वहां-वहां तुलसीदास ने संक्षिप्तता से काम लिया है और जहां वे एकत्र हैं, वहां विस्तार को अपनाया है। सीताराम तुलसीदास के आराध्य हैं। वह चाहते हैं कि वे दोनों इकट्ठे ही रहें। वाल्मीकि रामायण में यह दृष्टि नहीं। अरण्य-कांड, किष्किंधा-कांड, सुंदर और युद्ध-कांड वाल्मीकि ने विस्तार के साथ कहे हैं, पर तुलसीदास उन्हें थोड़े में कह गये हैं। बालकण्ड भी संक्षेप में ही वर्णित है। बालकाण्ड की प्रस्तावना को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि वह तुलसीदास

की अपनी मौलिकता का विषय है, रामायण या रामचरित का अंश नहीं।

विश्राम और सूत्र यज्ञ

१२ से २॥ तक भोजन और विश्राम, २॥ से ३ सूत्र-यज्ञ। सूत्र-यज्ञ के समय कुछ पठन होता है। उसका अंत संक्षिप्त प्रार्थना से होता है। प्रार्थना के श्लोक ये हैं—

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्।
असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर् गमय
मृत्योर् मा अमृतं गमय।

इसके बाद ३ से ५ तक लोग अपने-अपने हिस्से के काम निबटा लेते हैं। स्थानिक कार्यकर्ता भूदान-ग्रामदान कार्य के लिए जाते हैं। कभी-कभी इस अवधि में विनोबा के साथ कार्यकर्ता, प्रतिष्ठित लोग, व्यापारी, विद्यार्थी आदि मुलाकात, चर्चा या सभा में हिस्सा लेते हैं। होसरित्ती में बेसिक ट्रेनिंग कालेज, धारवाड के ४० छात्र आये थे। उनके सामने विनोबा का बड़ा सुंदर भाषण हुआ। छात्रों के सवाल थे—शिक्षा में अंग्रेजी का स्थान हो या नहीं, आदि। विनोबा ने उनके उत्तर दिये। अन्यत्र व्यापारियों की सभा थी।

शिगली,
१२-१२-५७

: ३२ :

अप्पा से चर्चा—१

विनोबा की कार्याध्याय-संगति

आज हमारी पदयात्रा ६ बजे प्रारंभ हुई। गतव्य स्थान ६-७ मील के फासले पर ही था। कल पूज्य अप्पासाहब विनोबा से मिलने आये हैं। आज सवेरे ५॥ बजे उनके लिए समय दिया था। यानी पहले से ही उनके साथ विनोबा बात कर रहे थे तो भी तय किये अनुसार विनोबा ६ बजे चल पड़े और 'श्रीमद् रमारमण गोविंदो हरि' कहकर यात्रा जारी की। हमारे साथ हाल में बंगाल की प्रथम टोली है। दो दिन उन्होंने चलना शुरू करते समय गाने का उपक्रम जारी किया है। आज भी वे गीत गाते हुए निकल पड़े। गांव से बाहर आने पर विनोबा ने 'शांति' कहकर उन्हें चुप कराया। फिर अप्पा से चर्चा शुरू की।

जबतक बापू थे

विनोबा बोले—जबतक बापू थे तबतक मैं एक स्थान पर गड़ा हुआ-सा काम करता था। बरसों तक मैंने रेल इस्तेमाल नहीं की। वैसे ही पास-पड़ोस के गांवों को छोड़ कहीं पैदल भी नहीं घूमा। ३० साल तक रचनात्मक कार्य करता रहा।

बापू के बाद

लेकिन बापू के चल बसने पर स्थिति बदल गई। प्रारंभ में ही हिंसा उभर पड़ी। स्वराज्य-प्राप्ति के साथ ही हिंदू-मुसलमानों के बीच भयानक हत्याकांड मच गया। इस अवस्था में सवाल यह उठा कि अहिंसा कैसे बचेगी। परिस्थिति का भान हुआ। चालीस-पचास लाख लोगों का पूर्व-पश्चिम पाकिस्तान से आवागमन हुआ। करीब एक करोड़ आबादी का [illegible] हुआ। हिंदुस्तान की शासनप्रणाली अधिक मजबूत, [illegible] स्थिर के कारण इधर अधिक लोग आ गये।

शरणार्थी और हरिजन

पश्चिमी पाकिस्तान मे जो हरिजन पंजाब मे आकर बस गये उनकी हालत बड़ी दयनीय थी। उनके पास वहां भी जमीन नहीं थी, और यहां तो वह सवाल ही नहीं था। सवर्ण हिन्दू, जिनके पास वहां जमीन थी, बड़े जमींदार थे। इधर से जो मुसलमान उधर गये वे वैसे नही थे। उनकी जमीन यहां थोड़ी-सी थी। वह किसे दी जाय? सवर्ण हिन्दुओं का दबाव सरकार पर बहुत था, इसलिए उन्हें जमीन दे देना सरकार ने तय किया था। किन्तु जवाहरलालजी को यह बात पसंद थी कि जमीन हरिजनों को दी जाय। सरकार के सामने यह जटिल समस्या थी। सिवा इसके वल्लभभाई का रुख और था। उन्हें जवाहरलालजी की नीति पसद नही थी। रामेश्वरी नेहरू ने कहा, "अब आप नया प्रबंध कायम करना चाहते है तो चूंकि पहले हरिजन भूमिहीन थे, इसलिए वही अन्याय जारी रखने की आवश्यकता नहीं। उन्हें जमीन मिलनी चाहिए।" जवाहरलालजी को यह उचित जचा। इसके अलावा मैंने कहा, "वहां हरिजनों के मालिक थे, जिनकी नौकरी मे वे ज्यों-त्यों करके अपनी गुजर-बसर करते थे। यहां क्या है? इस कारण से भी उन्हें जमीन मिलना उचित है।" आखिर राजेन्द्रबाबू की उपस्थिति मे पजाब सरकार ने हरिजनों को भूमि देने की बात मंजूर की। वह शुक्रवार था। उस दिन के प्रार्थना-प्रवचन मे मैंने पंजाब सरकार को बधाई दी। लेकिन उस निर्णय पर अमल नहीं हुआ। कहा गया कि किसी भी हालत मे हरिजनो की माग पूरी नही की जा सकती। रामेश्वरी नेहरू को बड़ा दुःख हुआ। पर चारा ही क्या था! सत्याग्रह भी उस हालत मे असभव था। दिल्ली छोड़कर मैं वापस आ गया।

शिवरामपल्ली में

परधाम मे कांचन-मुक्ति के प्रयोग का सूत्रपात किया गया। वर्ष-सवा वर्ष तक वह चलता गया। बाद में मैं शिवरामपल्ली गया। वहा से तेलंगाना मे। वहां पोचमपल्ली में जब जमीन मिल गई और हरिजनो की माग पर मिल गई, उनकी माग पूरी हो गई। पजाब की याद आ गई। मन मे विचार आया कि यही सिलसिला जारी रखा जाय। लगा कि उसे जारी

न रखना कायरता होगी। वह सिलसिला तेलंगाना में ठीक चला। किसको यह भरोसा था कि वह चलेगा? तेलंगाना के वातावरण के कारण, वहा की विशिष्ट परिस्थिति की बदौलत, वह आशादायी हो गया। तो भी यह धारणा थी कि अन्यत्र वह सफल होगा ही सो बात नही। परंधाम लौट आया।

नेहरूजी का निमंत्रण

कांचन-मुक्ति का प्रयोग जारी थी। मेरे रहने से उसे बल मिलेगा, इ लिए मैं रह जाऊं तो ठीक होगा, यह थी उनकी इच्छा। चार महीने ठ गया, पर मैंने कह दिया कि ठहर नहीं सकूगा। प्लॉनिंग कमीशन की आल चना मैंने की थी, इसलिए नेहरूजी का निमंत्रण चार महीने की अव खत्म होने से पहले ही मिला। उन्होंने लिखा था—"चर्चा करनी है, अ जल्दी आइये, और फुर्सत लेकर आइये।" मैंने उन्हे लिखा कि मैं पैदल आ रहा हूं, इसलिए जल्दी न रहेगी।

दिल्ली में

भूदान पाते-पाते दिल्ली गया। खादी और ग्रामोद्योग हमारे वॉर पोे न्शल्स् हैं, कल युद्ध छिड जाने पर देश मे जनता बिना उनकी सहायता टिक नही सकेगी, आदि दलीलें पेश की। अहिंसा को आधार नही दिखा दे रहा था, वह अब मिल गया। सबके प्रपच की चिंता करना ही परमा साधन है, यह आपका कहना मुझे मजूर है। इसमे 'सब' शब्द महत्त्व क है। अपने-पराये का भेद यहा मुमकिन नही। अपनो मे सिर्फ ब्राह्मण ह नही, हरिजन भी शामिल है, यह ठीक है। लेकिन इतने से काम नहीं चलेगा आपका नेशनलिज्म यहा काम नही आयेगा। इसलिए मैंने 'जयहिंद' क जगह 'जय-जगत्' मंत्र अपनाया है। पार्लमेंट मे फौजी बजट पर चर्चा नह होती, मांगें बिना चर्चा के ही तुरंत मंजूर होती है। हमारा नेशनलिज्म पाकिस्तान के डर पर खडा है। एक बार मैं पडितजी से बोला—"आप अर्थ-संकल्प, आपकी योजनाए आप तय करते हैं या पाकिस्तान?" इसपा पडितजी बोले—"पाकिस्तान का बजट बनानेवाले ही हमारा बज बनाते हैं।"

शांति-सेना का विचार

अब केरल में भूमि-समस्या बड़ी तीव्र है। फी आदमी ½ एकड़ भूमि वहां है। एक वर्गमील में १००० तक आबादी है। इसलिए वहां के आदमियों को बाहर जाना चाहिए। कोई भी कहीं भी जा बस सकता है, ऐसा होना जरूरी है। पर यह बिना अहिंसा के संभव कैसे? प्लानिंग में उसका समावेश कैसे हो? इसीलिए शांति-सेना की बात सोची। ऐसा होना चाहिए कि स्थान-स्थान पर सेवक मौजूद हैं। अन्य समय में वे सेवा-सैनिक बनेंगे, खादी-ग्रामोद्योग का काम करेंगे, लोगों से मिल-जुलकर रहेंगे। प्रसंग पड़ने पर शांति स्थापना करेंगे। अगर आज शांति-सैनिक होते तो रामनाथपुरम् में दंगा न होता। बाद में जी रामचन्द्रन् और साथियों ने वहां काफी काम किया है। इसका असर पंडितजी पर अच्छा हुआ है। उन्होंने बताया भी, "पुलिस की आवश्यकता क्यों रहे? पीसब्रिगेड्स—शांतिसेनाएं—यह काम करें।"

गांधीजी के बाद हमारा काम

अब गांधीजी नहीं रहे। अतः हम जो ५-५०, अधिक-से-अधिक १०० गांधीजी के अनुयायी हैं, उन्हें चाहिए कि वे अहिंसा-प्रचार का काम करें। अकेले गांधीजी हम ५० आदमियों से भारी थे। अगर गांधीजी होते तो मेलवाल के लिए ८ साल नहीं लगते। अतः हम जो गांधीजी के आदमी हैं, उन्हें चाहिए कि इसी काम में लग जायं। इसके बिना यह काम नहीं होगा।

ग्रामदान ही नींव

ग्रामदान से भू-समस्या हल हो सकेगी, ऐसा आभास पैदा किया गया है। इस कारण कम्यूनिटी प्रोजेक्टवाले अब कहने लगे हैं कि ग्रामदानी गांवों में ही हमारा काम संभव है, क्योंकि अन्यत्र कम्यूनिटी है कहां? वहां सारे इंडिविज्युअल्स हैं। डे साहब कहते थे—हमारे कार्य से गरीबों को सीधे मदद नहीं पहुंचती। मदद को अपनी तरफ खींचनेवाले जो धनवान या मध्यवित्त लोग हैं वे ही हमसे लाभ उठाते हैं। इसलिए ग्रामदान और शांति-सेना दोनों पर बल देना चाहिए। इन दोनों के बीच ग्राम-स्वराज्य आता है। पर

हमारी ताकत सीमित है। हम व्यक्तिगत रूप से आदर्शों का पालन कर सकेंगे और सार्वत्रिक प्रचार भी पर चार देहातों को लेकर ग्राम-स्वराज्य का काम संभव नही। ईसा, मुहम्मद ने यही किया था। दस-बारह ग्रामदान लेकर उनकी समस्याएं हल करने बैठना व्यक्तिगत गृहस्थी चलाने जैसा है। लोगों की गृहस्थी चलाना मेरा काम नहीं। वह काम ब्रह्मा, विष्णु, महेश के जिम्मे है। सोचिये, आप कौन हैं ? अब ग्रामदान पाकर कम्यूनिटी प्रोजेक्ट का प्रयोग करना हो तो किया जा सकता है। पर उसका नतीजा होगा दुनिया की प्रगति को रोक रखना।

काम का घेरा काटकर चला

जेल से मुक्त होकर गोपुरी मे रहा। साम्ययोग का प्रयोग किया जा रहा था। लोग बोले, "अब इसे आप ही चलाइये। हम नहीं चला सकते।" मैं तीन महीने वहा रहा, लेकिन मैंने बताया कि मैं उस काम में फंसकर नहीं रह सकता। आप नही कर सकते तो दूसरे करेंगे।

स्वावलम्बन भी घेरा

अप्पासाहब—हमारा आदर्श है शोषणरहित समाज की स्थापना करना। स्वावलंबन हमें सिद्ध करना होगा। अपना आदर्श हमे सिद्ध करना ही चाहिए।

विनोबा—यह भी एक अहता ही है कि हम स्वावलम्बन का अपना आदर्श सिद्ध करेंगे। मुझे चार सेर दूध की जरूरत है। अब यह क्या बिना शोषण के मिलेगा ? उसमे स्वावलम्बन करने बैठूं ? उससे हम संकुचित बनेंगे, न कि व्यापक। कहते हैं कि बुद्ध मांसाशन किया करते थे। मांसाशन उस जमाने में आम रिवाज था। उन्होंने उसका निषेध नहीं किया। अगर वह करते तो विचार-प्रचार न कर पाते, समाज से अलग पड जाते, असफल या हास्यप्रद बन बैठते। मैं गांधीग्राम गया था। जी.रामचन्द्रन् आदि सब थे। मैंने उनके सामने सीधा सवाल रखा—"खादी-ग्रामोद्योग के प्रयोग करने बैठ जाऊं ? क्या वह देश के लिए लाभकारी होगा ? कहिये, मैं घूमना छोड़ देता हूं।" रात में जी.रामचन्द्रन की चिट्ठी आई—"आपके कार्य के साथ अबतक हृदय था ही, पर अब बुद्धि भी है। मैं

स कार्य के लिए अपनेको समर्पण कर देता हूं।"

स्वावलम्बन की स्थापना करने से मानसिक समाधान की प्राप्ति होगी, र व्यापक सामाजिक कार्य नही हो पायेगा। युद्ध छिड गया, अनावृष्टि ी आफत आई तो क्या दशा होगी, सोचिये तो सही। आज देश मे चार करोड़ के लिए अन्न की कमी है, और वैसी नौबत आई तो लाखो लोग मर मिटेंगे। जबतक स्वराज्य नही था तबतक अग्रेजो पर दोष लादा जा सकता था। पर वह सुविधा अब नही रही। अब वह दोष हमारे ही मत्थे मढा जायगा। यह सरकार नही टिक सकेगी। संस्था छोडकर प्रचार के लिए बाहर जाने की प्रेरणा मिलेगी। नया विचार, गाधी-विचार, लोगो को समझाने की, दुनिया मे सबकी ओर पहुचाने की प्रेरणा मिलेगी। पर वैसी नौबत आ पडने की मै राह नही देखता। हम है ही कितने? पहले ही हम सब इस कार्य मे लग जायगे तो विचार-प्रचार मुमकिन होगा और सरकार को अपना प्लान बदलने पर मजबूर करेंगे। काल की रफ्तार तेज है, स्वावलम्बन के प्रयोग मे अटके रहने के लिए समय नही।

ग्रामदान और तत्सबधी कार्य—डिफेन्स मेज़र

*अप्पा—असली कठिनाई यह है कि ग्रामदान का महत्त्व लोगो को कैसे समझाया जाय। उन्हे चुप बैठाया जा सकता है, पर उनको अनुकूल कैसे किया जाय? यह है असली समस्या।

विनोबा—येलवाल-परिषद् ने इस बारे मे पथप्रदर्शन किया है। यह कहना पर्याप्त नही होगा कि ग्रामदाम लाभकारी है। बिना ग्रामदान के ग्रामराज्य सभव नहीं और बिना ग्रामराज्य के खतरा है। केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकार, प्लॉनिंग कमीशन, कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट इन चारो पर ही निर्भर मत रहिये, अपने पैरो पर खड़े रह जाइये—जवाहरलालजी यह कह चुके ही है। बिना ग्रामदान के आप गाव को सुखी नही बना सकते, मेरा चैलेंज है। कृष्णदास ग्राम-संकल्प पर बल देता है। कहता है, ग्राम-सकल्प पहले होने चाहिए, पर मै पूछता हूं—कितने हुए ग्राम-सकल्प? तामिलनाड मे ३०० ग्रामदान हुए तो ग्राम-सकल्प हुए केवल पद्रह-बीस। ग्राम-संकल्प की अपेक्षा ग्रामदान आसान है। ग्राम-सकल्प मे बडा झमेला रहता है। उसका

ग्रहण नहीं होता। खादी-ग्रामोद्योग का संकल्प आसान नहीं। ग्रामदान में केवल भूमि का सवाल रहता है। निश्चय हुआ है कि ५० फीसदी जमीन तथा ८० फीसदी लोग इकट्ठे हुए तो ग्रामदान हो सकता है। हरेकृष्ण मेहताब अबतक विरोधी थे। केवल जाहिर ही नहीं लिखते थे, अपने निजी व्यक्तिगत पत्रों में भी इसके खिलाफ आवाज उठाते थे। पर येलवाल से लौटने के बाद उन्होंने आप ही एक पत्रक में प्रकाशित किया कि ग्रामदानी गांवों के लिए हर प्रकार की सहायता मिल जायगी। यह पत्रक गांव-गांव में बांटा गया। येलवाल में मैंने ग्रामदान तथा ग्रामसंकल्प को डिफेन्स मेजर बतलाया। एक विद्यार्थी की भांति पंडितजी ने उसे लिख लिया। अतः अन्य कार्यों में न उलझते हुए भूदान-कार्य में अपने-आपको समर्पित कर देना ही धर्म ठहरता है। ग्रामदान होने पर बाहरी साधन जुटाये जा सकते हैं, अन्यथा मांग और उसकी पूर्ति एक-दूसरे से मेल नहीं खायगी।

प्रचार ही कीजिये

अप्पा—चालू कार्य कैसे संपन्न होंगे?

विनोबा—नानाभाई भट्ट मिलने आये थे। वह कहते थे कि ऐसा लग रहा है कि जो कल्पनाएं मन में संजोकर रखी वे शायद असफल होंगी। सरकार ५वीं कक्षा से अंग्रेजी पढ़ाने की सोच रही है। आप इसका क्या इलाज सुझाते हैं? वह बोले, "गांधीवादियों को चाहिए कि और सब काम छोड़कर बीस बरस तक यानी इस पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी के आने तक प्रचार-कार्य ही करते रहें। इससे सरकार का ध्यान इसकी ओर खिंच जायगा और परिस्थिति से लाचार होकर सरकार और जनता हमें अपनी ओर बुलायेगी और तब हमारे काम सफल होंगे। तबतक हमें प्रचार-ही-प्रचार करते रहना चाहिए। इसलिए मेरा कहना यह है कि हम त्रिविध कार्य करें—१. शहरों में शांति-सेना की स्थापना, २. एकाध समूचा जिला ग्रामदान में प्राप्त कर उसका सघन क्षेत्र बनाना, ३. सर्वत्र घर-घर में साहित्य का प्रचार करना।

नव विचार और प्रचार

दूसरी बात यह है जब कोई क्रांतिकारी नया विचार उठता है, तब

घुमक्कड़ी आवश्यक होती है। बुद्ध, ईसा, शंकर, रामानुज सब घूमे। उस घुमक्कड़ी में कभी सुयश, कभी अपयश मिलता ही है। व्यापक प्रयोग होना चाहिए। केलप्पन ने एक जिला केरल में इस प्रकार बनाने के लिए कमर कस ली है। वहां के ग्रामदानी गांव के काम में खादी-ग्रामोद्योग आयोग की ओर से वैकुंठभाई से मदद मांगी है। वहां अदालत-कचहरी उठ जायगी। सब ओर शांति और सहयोग बढ़ जायगा, ग्रामराज्य स्थापित होगा। ऐसा अगर एक जिला बन गया तो समूचा केरल क्यों नहीं बनेगा? इस प्रकार का व्यापक कार्य हम नहीं करेंगे तो एक कोने में पड़े रहना होगा। जब मैं पवनार में रह रहा था तब दुनिया के लोगों को, जो बापू से मिलने आते थे, बापू मेरे पास भेज देते। कहते, "क्या विनोबा को आपने देखा है? जाइये और उनसे मिलिये।" आज अमरीका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, रूस आदि देशों के लोग इधर आते हैं, पदयात्रा में शामिल होते हैं। इससे उन्हें प्रेरणा मिल रही है।

ग्रामदान और कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट

कटक शहर में नवबाबू शान्ति-सेना इकट्ठी कर रहे हैं। कोरापुट जिला पूरा-का-पूरा ग्रामदानी हो जाय, यह उनकी कोशिश है। साहित्य-प्रचार हो रहा है।

मध्यप्रदेश में बाबा राघवदास[1] घूम रहे हैं। वहां एक सौ पचास ग्राम-दान हुए हैं। चार महीने रहने पर पूरा जिला ग्रामदानी हो सकेगा। वहां की राजमोहिनी देवी—लोग उन्हें देवी ही मानते हैं—उन्हें वहां रहने के लिए आग्रह कर रही हैं। तब राघवदास ने मुझसे पूछा, "क्या करूं?" मैंने लिख दिया, "रह जाइये।"

कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट देश भर फैलने जा रहा है। हर ग्राम का उसमें अन्तर्भाव होगा। वे आप लोगों का सहयोग चाहते हैं। अगर ग्राम कहीं एकाध जगह ही हो तो वे आपसे सहयोग कैसे कर सकेंगे? इसलिए इसके निश्चय का अर्थ यही है कि आपका फैलाव उनके समकक्ष चाहिए। इसलिए व्यापक रूप से प्रचार करने की तैयारी करनी होगी।

[1] अब दिवंगत हो गये।

ग्रहण नहीं होता। खादी-ग्रामोद्योग का संकल्प आसान नहीं। ग्रामदान में केवल भूमि का सवाल रहता है। निश्चय हुआ है कि ५० फीसदी जमीन तथा ८० फीसदी लोग इकट्ठे हुए तो ग्रामदान हो सकता है। हरेकृष्ण मेहताब अबतक विरोधी थे। केवल जाहिर ही नहीं लिखते थे, अपने निजी व्यक्तिगत पत्रों में भी इसके खिलाफ आवाज उठाते थे। पर येलवाल से लौटने के बाद उन्होंने आप ही एक पत्रक में प्रकाशित किया कि ग्रामदानी गावों के लिए हर प्रकार की सहायता मिल जायगी। यह पत्रक गांव-गांव में बांटा गया। येलवाल में मैंने ग्रामदान तथा ग्रामसंकल्प को डिफेन्स मेजर बतलाया। एक विद्यार्थी की भांति पंडितजी ने उसे लिख लिया। अतः अन्य कार्यों में न उलझते हुए भूदान-कार्य में अपने-आपको समर्पित कर देना ही धर्म ठहरता है। ग्रामदान होने पर बाहरी साधन जुटाये जा सकते हैं, अन्यथा मांग और उसकी पूर्ति एक-दूसरे से मेल नहीं खायगी।

प्रचार ही कीजिये

अप्पा—चालू कार्य कैसे सम्पन्न होंगे?

विनोबा—नानाभाई भट्ट मिलने आये थे। वह कहते थे कि ऐसा लग रहा है कि जो कल्पनाएं मन में संजोकर रखी थे शायद असफल होंगी। सरकार ५वीं कक्षा से अंग्रेजी पढ़ाने की सोच रही है। आप इसका क्या इलाज सुझाते हैं? वह बोले, "गांधीवादियों को चाहिए कि और सब काम छोड़कर बीस बरस तक यानी इस पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी के आने तक प्रचार-कार्य ही करते रहें। इससे सरकार का ध्यान इसकी ओर खिंच जायगा और परिस्थिति से लाचार होकर सरकार और जनता हमें अपनी ओर बुलायेगी और तब हमारे काम सफल होंगे। तबतक हमें प्रचार-ही-प्रचार करते रहना चाहिए। इसलिए मेरा कहना यह है कि हम निम्न कार्य करें—१. शहरों में शांति-सेना की स्थापना, २. एकाध समूचा जिला ग्रामदान में प्राप्त कर उसका सघन क्षेत्र बनाना, ३. सर्वत्र घर-घर में साहित्य का प्रचार करना।

नव विचार और प्रचार

दूसरी बात यह है कि ... नया विचार उठता है, तब

घुमक्कड़ी आवश्यक होती है। बुद्ध, ईसा, शकर, रामानुज सब घूमे। उस घुमक्कड़ी मे कभी सुयश, कभी अपयश मिलता ही है। व्यापक प्रयोग होना चाहिए। केलप्पन ने एक जिला केरल मे इस प्रकार बनाने के लिए कमर कस ली है। वहा के ग्रामदानी गाव के काम मे खादी-ग्रामोद्योग आयोग की ओर से वैकुठभाई से मदद मागी है। वहा अदालत-कचहरी उठ जायगी। सब ओर शांति और सहयोग बढ जायगा, ग्रामराज्य स्थापित होगा। ऐसा अगर एक जिला बन गया तो समूचा केरल क्यो नही बनेगा? इस प्रकार का व्यापक कार्य हम नही करेंगे तो एक कोने मे पडे रहना होगा। जब मै पवनार मे रह रहा था तब दुनिया के लोगो को, जो बापू से मिलने आते थे, बापू मेरे पास भेज देते। कहते, "क्या विनोबा को आपने देखा है? जाइये और उनसे मिलिये।" आज अमरीका, इग्लैंड, जर्मनी, जापान, रूस आदि देशो के लोग इधर आते हैं, पदयात्रा मे शामिल होते हैं। इससे उन्हे प्रेरणा मिल रही है।

ग्रामदान और कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट

कटक शहर मे नवबाबू शांति-सेना इकट्ठी कर रहे हैं। कोरापुट जिला पूरा-का-पूरा ग्रामदानी हो जाय, यह उनकी कोशिश है। साहित्य-प्रचार हो रहा है।

मध्यप्रदेश मे बाबा राघवदास[1] घूम रहे है। वहा एक सौ पचास ग्रामदान हुए हैं। चार महीने रहने पर पूरा जिला ग्रामदानी हो सकेगा। वहा की राजमोहिनी देवी—लोग उन्हे देवी ही मानते हैं—उन्हे वहा रहने के लिए आग्रह कर रही है। तब राघवदास ने मुझसे पूछा, "क्या करू?" मैने लिख दिया, "रह जाइये।"

कम्यूनिटी प्रॉजेक्ट देश भर फैलने जा रहा है। हर ग्राम का उसमे अतर्भाव होगा। वे आप लोगो का सहयोग चाहते हैं। अगर आप कही एकाध जगह ही हो तो वे आपसे सहयोग कैसे कर सकेंगे? इसलिए उनके निश्चय का अर्थ यही है कि आपका फैलाव उनके समकक्ष चाहिए। इसलिए व्यापक रूप से प्रचार करने की तैयारी करनी होगी।

---

[1] अब दिवगत हो गये।

नये कार्यकर्ताओं का लाभ

जेल से छुटकारा मिलने के बाद मैं गोपुरी रहा। वहां साम्ययोग का प्रयोग शुरू किया। लोग कहने लगे—अब आप ही उसे सम्हालें, हमसे नहीं सम्हाला जायगा। तब उनका अनुरोध मैंने नहीं माना। कहा, "आप ही केवल मेरे हैं, इस प्रकार की भेद-भावना मेरी नहीं। वह ममत्व होगा, आसक्ति होगी।" अब ये लोग मेरे पास तीस-तीस सालों से हैं। पर उनके लिए संकीर्णता मुझे मंजूर नहीं। इस आंदोलन में कितने नवीन पुरुषार्थी जवान हमें मिले हैं। देखा जाय तो उनमें से कई भरी जवानी के संसार में हैं। निर्मला को एक भले गृहस्थ ने सलाह दी, "तुम यह क्या लेकर बैठी हो? तुम अपना विचार देखो। इसमें तुम्हारा हित नहीं होगा।" पर उसने उनका कहना नहीं माना। सबका त्यागकर वह इस आन्दोलन से एकरूप हो गई है। ऐसे कई युवा लोगों का देश को लाभ हुआ है।

पूर्ण स्वावलंबन और पूर्ण साम्य ही क्रांति

ग्राम-सेवा-मंडल सौ फीसदी स्वावलंबन और ५०-७५ फीसदी साम्य-योग की साधना कर रहा है तो खादीग्राम १०० फीसदी साम्ययोग और ५-१० फीसदी स्वावलंबन का आचार करता है। ऐसे ये दो तरीके हैं। मंडल अब भूक्रांति के लिए बद्ध है। वंग आदि पचास-साठ नये सदस्य बन गये हैं। पर अगर ये उसे ठीक नहीं चला पायें, स्वावलंबन-युक्त पूर्ण साम्ययोग सिद्ध नहीं कर सकें तो उन्हें असफल ही मानना पड़ेगा। उल्टे, बाहरी मदद पर बरसों निर्भर रहकर स्वावलंबन सिद्ध न करना अपयश ही है। जब दोनों पूर्ण होंगे, तभी उसे सिद्धि कहा जायगा, क्रांति माना जायगा।

लक्ष्मीश्वर की राह पर,
१३-१२-५७

: ३३ :

अप्पा से चर्चा—२

हमारी शान्ति-सेना

पुराने और नये गुरु

आज भी कल की भांति अप्पासाहब से बातचीत हुई। प्रारंभ में बंगाली भजन गाया गया। लक्ष्मीश्वर ग्राम से बाहर जाने में बहुत समय लगा। बड़ा गांव है, पुरानी राजधानी है। कन्नड़ रामायण के रचयिता पंप का निवास-स्थान है। यह प्राचीन कवि जैनधर्मी था। पंप की प्रेरणा से कल का भाषण हुआ। सभा बाजार में बुलाई गई थी। वहा उस धूल तथा कोलाहल में विनोबा बोलना नहीं चाहते थे। पर सभा का स्थान कहा हो, कैसा हो, आदि बातो से प्रारंभ करके आज के विश्वविद्यालय और प्राध्यापक तथा पुराने संत और आचार्य तुलना के लिए ले लिये। आज की स्थिति का शोचनीय चित्र उपस्थित किया गया और क्या किया जाना चाहिए, इस ओर ध्यान खीचा गया। पूर्वकाल के ज्ञानी निरपेक्ष थे और स्वयं करुणा से प्रेरित होकर लोगों के पास पहुंच जाते थे। बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज आदि ने देश का भ्रमण करके धर्म-प्रचार तथा ज्ञान-प्रचार किया। इस बात को समझाकर और एक नई बात पेश की, वह यह—देहात प्रकृति और परमेश्वर की सेवा करते हैं, शहरों को चाहिए कि वे इन सेवकों की सेवा करें। गांव से बाहर निकलकर आम रास्ते पर आते ही अप्पा से विनोबा बोले—

शांति-सेना के बिना तरणोपाय नहीं

शांतिसेना तब याद आती है, जब कहीं दंगाफसाद हो जाता है, अन्यथा उसका स्मरण नहीं होता, भान नहीं होता। वह रहे, इसलिए कुछ खास कार्य-क्रम जरूरी है।

शांतिसेना का सूत्रपात कैसे हुआ? केरल में अत्यल्प बहुमत के बल पर सरकार बनी है। अतः पक्ष-पक्ष के बीच और उसके कारण समाज में तनाव

रहेगा ही। ऐसी ननातनी में विना शांतिसेना के तरणोपाय नहीं, यह बात ध्यान में आई। उसके बाद रामनाथपुरम मे दंगा हुआ। उसने तो शांति-सेना की जरूरत और स्पष्ट हो गई। ऐसी निष्पक्ष सेवापरायण शांतिसेना के बिना समाज का, देश का, काम चलेगा ही नही।

दो साल पहले हरिभाऊजी उपाध्याय ने सुझाया था कि शांतिसेना का काम देशभर में मैं करूं, पर उसमें जो उनकी कल्पना थी वह एकदम हेय थी। पुलिस तथा लश्कर से काम लेने से पहले शांतिसेना शांति-स्थापना की कोशिश करे और सफलता न मिले तो पुलिस या सेना को बुलाया जाय। यह थी उनकी कल्पना। पर न यह शांति होगी, न सेना।

समाज की सुव्यवस्थित धारणा के लिए भूमि, शिक्षा तथा शांतिसेना जनता के अधीन रहनी चाहिए, जिससे समाज को मुक्ति और व्यक्ति को शांति, पुष्टि तथा तुष्टि का लाभ होगा। नई तालीम ही हमारी शांतिसेना है। बिहार के तुर्की ग्राम में नई तालीम के सम्मेलन में मैंने यही संदेश सुनाया है।

काकासाहब के और मेरे विचार एक-दूसरे से समानता रखते हैं, पर समय में भेद होता है। यह अनुभव अनेक बार हुआ है। जातिभेद का उच्छेद, शांतिसेना और नई तालीम इनके संबंध मे ऐसा हुआ है। जब-जब वह इस संबध मे बोले तब-तब यही हुआ है।

येलबिगी के मार्ग पर,
१४-१२-५७

: ३४ :

अप्पा से चर्चा—३

विना साक्षात्कार के ज्ञान नही

पिछले दो दिन अप्पासाहब से ही चर्चा चली। आज वह जानेवाले थे, इसलिए आज भी उनके साथ ही वार्तालाप हुआ। प्रारंभ हुआ एक

बंगाली गीत में, जो कृष्णकांत चक्रवर्ती द्वारा गाया गया। उसकी समाप्ति के बाद विनोबा बोलने लगे—

परमार्थ याने

कल आपने कहा कि सबके प्रपंच को किना परमार्थ है। पर वह पूर्णतया सही नहीं। परमार्थ में बहुत अधिक बातें अन्तर्भूत हैं।

अप्पा—परमात्मा 'दशांगुलं उरसा' (विश्व को व्याप्त करके दस अंगुलियां ऊपर रहता है), वैसे ही परमार्थ परिभाषा की परिधि में नहीं पकड़ा जाता।

कालिक तथा शाश्वत मूल्य

विनोबा—इधर सब लोग कह रहे हैं कि गीता का प्रतिपाद्य विषय कर्मयोग है। तिलक, गांधी, अरविंद सब कर्मयोग का प्रतिपादन करते हैं। यह महिमा उन व्यक्तियों की नहीं। यह काल की महिमा है। काल ही ऐसा है कि वह सबको कर्मयोग की प्रेरणा देता है। कई मूल्य कालिक रहते हैं तो कई शाश्वत। शाश्वत मूल्यों की प्रेरणा बिना साक्षात्कार के नहीं मिलती। श्रीअरविंद ने साक्षात्कार का अनुभव किया था। तिलक ने शायद उतना नहीं किया हो। जब तिलक मांडले-जेल में थे तब वह चार-छह घंटा समाधि में बैठा करते थे। उनके रसोइए ने ऐसा लिखा है। तिलक को केवल स्थूल कर्मवादी, असाक्षात्कारी नहीं कहा जा सकता। ईश्वर पर उनकी कितनी गाढ़ी श्रद्धा थी। गीतारहस्य में उन्होंने स्पष्ट निवेदन भी किया है, There are higher powers (उच्चतर शक्तियां हैं)। यह उनकी श्रद्धा के साक्षात्कार का द्योतक है। 'गीतारहस्य' का दूसरा प्रकरण पढ़ने लायक है। उसमें उनका विचार स्पष्ट हुआ है। चित्त की भूमिकाएं उसमें वर्णित हैं।

साक्षात्कार द्विविध

साक्षात्कार दो प्रकार का रहता है—एक ध्यानरूप और दूसरा प्रेमरूप। बुद्ध का करुण-साक्षात्कार ध्यानरूप था। अरविंद का भी ध्यानरूप था। अरविंद में ज्ञान, ध्यान, कर्म पाये जाते हैं। पर वैसा प्रेम नहीं दिखाई

देता। चैतन्य, ज्ञानदेव, नामदेव में प्रेमरूप साक्षात्कार की झांकी मिलती है। ज्ञानदेव में सब योग पाये जाते हैं—प्रेम, ज्ञान, ध्यान, कर्म। वह ध्यानयोगी थे। उसका सुविस्तृत वर्णन उन्होंने 'ज्ञानेश्वरी' में किया है। गोरखनाथ की भांति यह ध्यानयोगी थे। यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें कर्मयोग नहीं था। 'ज्ञानेश्वरी' में हर योग के निरूपण में वह रंग गये हैं। कर्मयोग का निरूपण भी उसी तन्मयता के साथ उन्होंने किया है। इसके अलावा 'ज्ञानेश्वरी' में गुण-विकास पर भी बल दिया है।

'ज्ञानेश्वरी' धर्म-ग्रंथ

'ज्ञानेश्वरी' धर्म-ग्रंथ है। जिस ग्रंथ में जीवन के सब अंगों का यथोचित परिपोष रहता है, उसको मैं धर्मग्रंथ कहता हूं। मनुस्मृति, कुरान, बाइबल सर्वांगीण नहीं हैं। पर ज्ञानेश्वरी वैसी नहीं। वह सर्वांगीण है। इस कारण वह हमारा धर्मग्रंथ है। कुरान में ध्यानयोग, तत्त्वज्ञान नहीं। उसकी पूर्ति सूफी पथ ने की है। धम्मपद में नीति, विरक्ति, ध्यान है; पर न प्रेम है, न तत्त्वज्ञान। रामदास में आपको कही हुई सबके प्रपंच की चिंता है। उन्होंने तो कहा है—चिंता करितों विश्वाचो—अर्थात् विश्व की चिंता किया करता हूं। पर वह थे भक्त। उनकी रामोपासना बड़ी कड़ी थी। ये सब प्रेमरूप साक्षात्कारी। पर कोई भी तत्त्व-सिद्धान्त बिना आचार के पूर्ण नहीं होता, बिना विनियोग के पूर्ण नहीं होता।

कार्ल मार्क्स का दर्शन असमाधानकारक

कार्ल मार्क्स ने अपना दर्शन वास्तविकता को लेकर नहीं बनाया। उसका वह प्राग्माटिज्म है, भविष्यद्‌वाद है। वह अधूरा है, क्योंकि उसकी बुनियाद में साक्षात्कार नहीं और बिना साक्षात्कार के जगत् का यथार्थ ज्ञान संभव नहीं। इसलिए उसका दर्शन उसके अनुयायियों को भी संतोष नहीं दे रहा है। एक बार केरल के शिक्षामंत्री ने सभा में कहा था—"कम्यूनिज्म का ईश्वर से विरोध नहीं है, पर आप लोगों की जो ईश्वरविषयक धारणा है, जो विधिविधान है, वह उसे मंजूर नहीं।" किन्तु वेदान्त की कल्पना स्वीकार करने में उसे कठिनाई नहीं महसूस होगी। शंकराचार्य के तत्त्व-सिद्धान्तों का असर हुए बिना नहीं रहेगा। केरल के कम्यूनिस्ट इतना बोल सकते हैं, यह

उसीका परिणाम है। अंतिम सत्य बाह्य भौतिक आविष्कारों द्वारा नही मिलेगा। उसके लिए शरीर, समाज, पृथ्वी, सबसे अलग होकर अनुभव करना होगा।

सावनूर की राह पर,
१५-१२-५७

: ३५ :

अप्पा से चर्चा—४

वर्णाश्रम और संन्यास

वर्ण और आश्रम

आश्रमधर्म तथा वर्णधर्म मिलकर वर्णाश्रमधर्म शब्द प्रयोग होता है, तो भी दोनो भिन्न हैं। वे अविभाज्य नही। जिस समाज मे वर्ण-धर्म नही है, उसमे आश्रमधर्म रह सकता है, इसके अलावा वर्णधर्म सनातन नही। सत्ययुग मे एक ही वर्ण माना गया है, पर आश्रमधर्म वैसा नही। वह सब समाजो तथा कालो मे लागू होनेवाला है।

ब्रह्मचर्य द्विविध

ब्रह्मचर्य द्विविध है। एक वेदाध्ययन के लिए तथा दूसरा मुक्ति के लिए। आपका, मेरा ब्रह्मचर्य दूसरे प्रकार का है। जिनमें अध्ययनवृत्ति, सेवा-वृत्ति रही हो वे ब्रह्मचर्याश्रम मे रहेंगे। जिनमे वह नही है, वे ब्रह्मचर्य से सीधे संन्यासाश्रम मे प्रवेश कर सकते हैं, जैसा कि शंकराचार्य ने किया।

गृहस्थाश्रम से सीधे संन्यास नही

जिन्हे संतानकामना है वे गृहस्थाश्रम मे प्रविष्ट होंगे। गृहस्थाश्रम के पहले और बाद मे संयम है। गृहस्थाश्रम में भी है। केवल संतानकामना की पूर्ति की गुंजाइश है। गृहस्थाश्रम से सीधे संन्यासग्रहण नही हो सकता, क्योंकि गृहस्थाश्रम के अनुषंग से जो कर्म प्राप्त होते है, उसे हटाने के

के लिए सन्यास से पूर्व वानप्रस्थाश्रम की आवश्यकता मानी गई है।

गृहस्थ जब विषयवासना से तथा गृह से मुक्त हो जाता है तब वह वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार कर सकता है। इस आश्रम में घर और मालिकी छोड़नी पड़ती है। पत्नी को छोड़ने की जरूरत नहीं मानी गई है।

सन्यास द्विविध

ब्रह्मचर्याश्रम से तथैव वानप्रस्थाश्रम से संन्यास ग्रहण करते हैं। यह सन्यास दो प्रकार का होता है—१. ज्ञान-सन्यास २. विविदिषासंन्यास। ज्ञान के कारण गृहीत सन्यास ज्ञानसन्यास है। पर ज्ञान के उद्भव के पहले ज्ञान-प्राप्ति के हेतु तपस्यारूप जो सन्यास स्वीकार किया जाता है उसे शास्त्रों में विविदिषासंन्यास कहते हैं। यह संन्यास भी दो प्रकार का है—वृत्ति-प्रधान और कर्म-प्रधान। मान लीजिये एक आदमी बम्बई में रहता है। उसमें सन्यास-ग्रहण की प्रवृत्ति जगी, पर वह अपनी जगह तथा काम छोड़ नहीं सकता। तब वह क्या करे? एक तो उसको चाहिए कि वह सन्यास के प्रतिकूल वातावरणवाली बम्बई छोड़ दे या सन्यास-ग्रहण की इच्छा छोड़ दे, या उस परिस्थिति में जो सम्भव हो उसे करे। इसे कहा जायगा कर्मप्रधान सन्यास। दूसरा आदमी ऐसा होगा कि वह कहेगा कि मुझे अमुक वृत्ति सजोनी है तो उसके प्रतिकूल वातावरण तथा कर्म का त्याग मुझे करना ही चाहिए। वह अपनी वृत्ति हमेशा स्थिर रखेगा। उसमें बाधा देनेवाले सब कुछ को काटकर दूर हटायेगा। इसी को मैं वृत्तिप्रधान सन्यास मानता हूँ। इसे कोई एस्केपिज्म कहेगा। पर वह पलायन है। क्रिकेट के खेल में मैदान का महत्व सबको परिचित है। अपने मैदान पर खेलना आसान होता है। वृत्ति-प्रधान सन्यासी अपना मैदान नहीं छोड़ता। तो भी अपने क्षेत्र में भी उसे कम लड़ना नहीं पड़ता। किसी भी मैदान पर बाजी मार ले जानेवाली टीम की अपेक्षा शायद इसे कम अंक मिलेंगे। पर अपना निजी क्षेत्र चुनना बुद्धिमानी ही होगी। गांधीजी से पूछा गया—"साँप को मार डालने का सवाल रहा है। इस बारे में आप साँप को मारेंगे या नहीं?" गांधीजी ने जवाब दिया, "मैं अहिंसा का उपासक हूँ। इस नाते उसको बचा लेना मेरा धर्म है, किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकता। इसलिए परिस्थिति बनने पर उस साँप को मारना पड़ेगा तो मैं मारूँगा। पर मैं समझूँगा कि वह मुझसे पापकर्म हो रहा

कर रहे हो, इसलिए तो मैं बताता हूं। लेकिन ठीक है, देखूं तो सही तुम क्या करोगे।" बापू ने सुझाया कि स्थान-परिवर्तन के लिए मसूरी, नंदीदुर्ग, महाबलेश्वर या और किसी ठंडी हवावाले स्थान मे जाकर रहना ठीक होगा। मैं बोला, "स्थान-परिवर्तन का सुझाव मुझे मंजूर है। स्थान मैंने चुन लिया है—पवनार। वहां मैं जाऊगा।" बापू बोले, "ठीक, गरीबो के लिए उचित स्थान ही तुमने निश्चित किया।" उसके बाद ७ मार्च १९३७ को मैं पवनार चला गया। मोटर मे जाना पडा, क्योकि पैदल चलने की भी ताकत कहा थी? मेरी शुश्रूषा के लिए सत्यव्रत था। मोटर जब धाम नदी के पुल पर पहुची तब मैं बोल उठा—'संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया'। सब कामो और सस्थाओ की चिंता एकदम छोड दी और बिल्कुल निश्चिन्त होकर बगले मे प्रवेश किया। केवल ज्ञानदेव और नामदेव के अभगो की पुस्तकें साथ थी। घण्टो मन शून्य बनाकर पडा रहता। यह मेरा शून्यता का अनुभव था। इन दिनो जो खा लेता, सब शरीर को पुष्टि प्रदान करता। बीच मे एक महीना नई तालीम के लिए दिया। इस महीने मे वजन मे बिल्कुल वृद्धि नही हुई। अन्य महीनो मे हर महीने चार पौंड के हिसाब से वजन बढ़ता रहा और ९ महीनों मे ३६ पौंड वजन बढ़ गया। इस अनुभव मे केवल शून्यमनस्कता ही रही। घडी को जिस प्रकार बन्द रखा जाय वैसे ही मन को बन्द रखा गया था।

चांडिल का अनुभव निर्विकल्प समाधि

इसके बाद १९५२ मे भूदान-यात्रा मे चांडिल में मैलिग्नट मलेरिया से बीमार पडा। औषधि लेना नही, केवल रामनाम से ही बीमारी से मुक्त हो जाने का विचार था। बुखार पीछा नही छोडता था और कमजोरी इतनी बढ़ गई थी कि कोई मेरे जीने की उम्मीद नही रखता था। श्रीकृष्ण सिंहजी आये थे। वह और लोगो से बोले, "मगनलाल गांधी इस तरफ आये और बीमार होकर चल बसे। अब सन्त विनोबा अगर दया नही करेंगे तो बिहार के लिए वह बडा कलक होगा। हमारी प्रार्थना है कि आचार्य दया करे और दवा ले लें।" बडी व्याकुलता के साथ अश्रुसिक्त नेत्रो से वह कह रहे थे। इस हालत मे १७ दिसम्बर को मैं करीब-करीब

साबरमती की अनुभूति : एकाग्रता

१९१६ से २० के दरमियान साबरमती-आश्रम में रहता था। रात को सुनसान मे, शब्द और दीप के शांत हो जाने पर, अपने कमरे के अन्धेरे में अपनी दरी पर बैठे-बैठे मैंने ध्यान करना शुरू किया और शीघ्र ही एकाग्रता प्राप्त हो गई। उसमे मुझे बहुत समाधान मिलने लगा। पर आगे चलकर शका उठ गई कि यह शुद्ध समाधि न हो, कुछ नीद भी हो। समाधि का आभास तो नही है? इस विचार से मैंने तीन महीने के इस प्रयोग को त्याग दिया और रात के बदले बड़े तड़के ३ बजे उठकर ध्यान करने लगा। उसमे जल्द सफलता नही मिली पर, प्रयत्नों के फलस्वरूप धीरे-धीरे एकाग्रता का अनुभव मिलने लगा। यह अभ्यास मैंने छः महीने तक किया। ध्यान और समाधि की यह मेरी पहली अनुभूति रही।

परंधाम का अनुभव--शून्यता

नालवाड़ी मे १९३७ में आठ-आठ घण्टे सूत कातने के प्रयोगो के कारण मै दुबला हो गया था और उस हालत में बुखार और खांसी ने हैरान किया। इस कारण जमनालालजी चिन्तित हो उठे। "मेरी मा ४२ की उम्र मे चल बसी। तुकाराम का भी देहपतन उसी उम्र में हुआ, और मेरा भी ४२वा साल चल रहा था। तो अब मै मानता हूं कि मेरी जीवन-यात्रा खत्म होने को है।" कभी-कभी विनोद में मै ऐसा भी बोल जाता। देह की तो फिक्र करता ही नही था। यह सब जानकीदेवी ने जमनालालजी से कहा और जमनालालजी ने बापू से कहा कि विनोबा की तन्दुरुस्ती चिंताजनक है, आप उन्हें बता दें। बापू ने मुझे बुलाया। बापू बोले, "तुम अपना शरीर ठीक नहीं रखते हो तो अब तुम मेरे पास मे आकर रहो। तुम्हें मै अपने कब्जे में लेता हू। किसी अच्छे डॉक्टर से जांच करवा लेंगे।" मैने कहा, "आपके उपचारों पर मेरा भरोसा नही। आपके पीछे यो तो कितने ही काम रहते है, उनमे बीमारो की तरफ ध्यान देना भी है। बीमार भी बहुत हैं, जिनमें से मै एक रहा। फिर मै किसी डॉक्टर के हाथ अपने शरीर को बेचना नही चाहता, वैसे तो शरीर और आत्मा को मै अलग नही मानता। अतः मै ही अपनी तबीयत की बात देख लेता हूं।" बापू बोले, "तुम कुछ नहीं

कर रहे हो, इसलिए तो मैं बताता हू। लेकिन ठीक है, देखू तो सही तुम क्या करोगे।" बापू ने सुझाया कि स्थान-परिवर्तन के लिए मसूरी, नदीदुर्ग, महाबलेश्वर या और किसी ठडी हवावाले स्थान मे जाकर रहना ठीक होगा। मैं बोला, "स्थान-परिवर्तन का सुझाव मुझे मजूर है। स्थान मैंने चुन लिया है—पवनार। वहां मैं जाऊगा।" बापू बोले, "ठीक, गरीबों के लिए उचित स्थान ही तुमने निश्चित किया।" उसके बाद ७ मार्च १९३७ को मैं पवनार चला गया। मोटर मे जाना पडा, क्योंकि पैदल चलने की भी ताकत कहा थी ? मेरी सुश्रूषा के लिए सत्यव्रतन् था। मोटर जब धाम नदी के पुल पर पहुची तब मैं बोल उठा—'संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया'। सब कामो और सस्थाओ की चिंता एकदम छोड दी और बिल्कुल निश्चिन्त होकर बगले मे प्रवेश किया। केवल ज्ञानदेव और नामदेव के अभगो की पुस्तकें साथ थी। घण्टो मन शून्य बनाकर पडा रहता। यह मेरा शून्यता का अनुभव था। इन दिनो जो खा लेता, सब शरीर को पुष्टि प्रदान करता। बीच मे एक महीना नई तालीम के लिए दिया। इस महीने मे वजन मे बिल्कुल वृद्धि नही हुई। अन्य महीनो मे हर महीने चार पौंड के हिसाब से वजन बढता रहा और ९ महीनो मे ३६ पौंड वजन बढ गया। इस अनुभव मे केवल शून्यमनस्कता ही रही। घडी को जिस प्रकार बन्द रखा जाय वैसे ही मन को बन्द रखा गया था।

चाडिल का अनुभव निर्विकल्प समाधि

इसके बाद १९५२ मे भूदान-यात्रा मे चाडिल मे मैलिग्नट मलेरिया से बीमार पडा। औषधि लेना नही, केवल रामनाम से ही बीमारी से मुक्त हो जाने का विचार था। बुखार पीछा नही छोडता था और कमजोरी इतनी बढ गई थी कि कोई मेरे जीने की उम्मीद नही रखता था। श्रीकृष्ण सिंहजी आये थे। वह और लोगो से बोले, "मगनलाल गाधी इस तरफ आये और बीमार होकर चल बसे। अब सन्त विनोबा अगर दया नही करेंगे तो बिहार के लिए वह बडा कलक होगा। हमारी प्रार्थना है कि आचार्य दया करें और दवा ले लें।" बडी व्याकुलता के साथ अश्रुसिक्त नेत्रो से वह कह रहे थे। इस हालत मे १७ दिसम्बर को मैं करीब-करीब

चल बसने को ही था। पास के लोगों से मैंने कहा, "मुझे बैठा दो।" मुझे याद है, राजम्मा थी। उसने और लोगों की मदद से मुझे बैठा दिया और मैं समाधि में मग्न हुआ। शास्त्र में जिसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं, उसी प्रकार की वह अनुभूति थी। निर्गुण स्वरूप की अनुभूति थी। उसका उल्लेख मैंने किया था। उसे जानने के लिए जाजूजी ने अनेक बार लिखा-पढ़ी की। पर मैंने कोई जवाब नहीं दिया, जिससे जाजूजी ने समझ लिया कि यह अनुभव शब्दों में अभिव्यक्त होने की क्षमता नहीं रखता और वह चुप हो गये।

उलाह का अनुभव : सगुण स्पर्श

इसके अनंतर मुंगेर जिले में उलाह ग्राम मे शिवमन्दिर के तलघर मे ठीक पिंडी के नीचे बैठा था, तब यह अनुभव हुआ कि शिवजी मुझपर आरूढ़ हैं। मैं उनका नंदी हूं। अब 'अधिरूढ़-समाधियोग' का नया अर्थ मालूम हुआ। अबतक मैं उसका आशय 'योगारूढ़' याने 'योग पर आरूढ' ही समझ रहा था। पर अब वह यह हुआ—योग ही जिसपर आरूढ़ हो गया है, जो योग का वाहन बन गया है। यह था सगुण स्पर्श। उसके बाद मे कार्यकर्ताओं को डांटा करता। उसमें मुझे कुछ बुरा नहीं लगता। कार्यकर्ताओं को दुःख होता, पर मै उन्मत्त की भांति बोलता। मेरे पिछले भाषणों में और बाद के भाषणो में बारीकी से देखने पर कुछ फर्क जरूर महसूस होगा।

केरल का साक्षात् आलिंगन का अनुभव

उसके बाद २२ अगस्त १९५७ को कर्नाटक प्रवेश के दो दिन पहले मसहरी मे सो रहा था कि बिच्छू या और किसीने काटा, सो बाहर आ गया। बिछौना उठाकर देखा गया तो गोजर था। लगातार वेदनाओं का अनुभव हो रहा था। वेदनाएं इतनी तीव्र थी कि एक जगह बैठा नहीं जाता था। इधर-से-उधर, उधर-से-इधर, बेचैनी से घूम रहा था। राजम्मा के पिताजी ने मन्त्र का भी प्रयोग किया, पर कुछ भी असर न हुआ। वेदनाएं असह्य हो चली थी। पांच घण्टे तक यही सिलसिला जारी रहा। आखिर बिछौने पर लेट गया। आंखों से आंसुओं की झड़ी-सी लग रही थी। वल्लभ

को लगा, मैं दर्द के मारे आंसू बहा रहा हूं। वह मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगा। मैंने उसे बताया मुझे, कोई दुःख नहीं। मैं सो जाता हूं। तुम भी सो जाओ।

मैं मन में गुनगुना रहा था—

नान्या स्पृहा रघुपते हृदये मदीये
सत्यं वदामि च भवान् अखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघु-पुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥

पर दुःख दूर हो जाने की इच्छा तो थी ही। कहता था 'सत्यं वदामि'। पर वह था 'झूठं वदामि' ही। वह अहंकार ही था। जोर से मन से बोल उठा—"कहां तक तू सतायेगा?" और मेरी वेदनाएं मिट गईं। मुझे आलिंगन का अनुभव हुआ। आंखों से आंसू झरने लगे। मैं लेट गया और दो मिनट के भीतर गहरी नींद में डूब गया। वेदनाएं तो मिट गईं, पर दाहिने हाथ की तर्जनी बाद में डेढ़ महीना दुखती रही, और अब भी बायें हाथ की तर्जनी जैसी नहीं हुई। किंचित् जड़ता बाकी है। यह अनुभव सगुण (साकार?)-सा था। महादेवी लगातार पीछे पड़ी कि मैं इस अनुभव का वर्णन करूं। पर पच्चीस-तीस दिन तक उसे मैं टालता ही रहा। कहा—दामोदर को आने दो, सबको बताऊंगा। आखिर एक दिन बता दिया। दामोदर नहीं आया था।

संतों के साक्षात्कार

चैतन्य का साक्षात्कार प्रेममय था। वल्लभाचार्य का भी प्रेममय था। पर उसमें ज्ञान भी था। वह उतना आविष्ट नहीं था। बुद्ध का साक्षात्कार ध्यानमय था और अरविन्द का भी। यद्यपि वे उसे पूर्ण कहते तो भी मैं उसे ध्यानमय ही समझता हूं। गांधीजी का साक्षात्कार भावनापूर्ण था। पर ज्ञानदेव का पूर्ण था।

कवापुर की राह पर,
१६-१२-५७

: ३७ :

अहंकार का नाश ही मुक्ति

विंदु की शुद्धि और वृद्धि सिंधु में विलीन होने में

मं—कल के प्रार्थना-प्रवचन में आपने अकेले तप: साधना करनेवालों को स्वार्थी बताया। यह कहांतक उचित है? सामुदायिक साधना को जाय कहना ठीक है।

विनोबा—जहातक ठीक होगा वहांतक। कोई बीमार हो और उसे कुछ समय तक पचगनी में या कहीं अन्यत्र अलग उपचार के लिए रखा जाय तो समझा जा सकता है। उसी प्रकार मनःशान्ति के लिए कोई कुछ समय तक एकान्त में साधना करने जाय तो समझा जा सकता है। लेकिन ससारी आदमी जैसे मेरा घर, मेरी दारा कहा करते हैं, वैसे मेरा तप, मेरी मुक्ति कहते रहना भी उसी प्रकार का काम होगा। दोनो अहकार ही हैं। रस्सी को साप समझकर उससे भागना या उसे पीटना दोनों अज्ञानमूलक ही हैं। समूचे समाज की हितसाधना में अपना हित है। एकान्त में उसीके प्रतिनिधि-रूप बनकर चिंतन करना ठीक है, जैसा कि गायत्री मन्त्र में है। पर यह मानना कि मैं कोई अलग हू, ज्ञानी हू, अहंकार ही है। उसे मिटाना ही मुक्ति है। पर उस अहंकार को धारण करके तपस्या शुरू करना वद-तोव्याघात का अच्छा उदाहरण होगा। मुक्त होकर जाना कहा? मुक्ति की धारणा ही मूल में भ्रात है। मेरा गुण, मेरा दोष, इनसे मुक्त होना चाहिए। उनसे अलग हुए विना मुक्ति नही। विंदु की शुद्धि और वृद्धि सिंधु मे विलीन हो जाने मे है। जो मेरा तप, मेरी मुक्ति कहता है, उसे पूजीवादी ही कहना होगा। इसलिए उसे स्वार्थी कहना पड़ता है।

समूह-साधना सुलभ

समूह-साधना मे ब्रह्मचर्य-पालन भी आसान होता है। वात्सल्य-भाव की तृप्ति के लिए निजी संतान की आवश्यकता नही। औरों के बच्चे होते ही हैं। गृहस्थाश्रमी के लिए घृणा का भाव न रहे। आखिर मुक्ति के मानी अहंमुक्ति ही है। दूसरी मुक्ति कहा की? साम्यसूत्रों मे आखिरी सूत्र है—

अहंमुक्ति दासदान, अहंमुक्ति दासदान्। (वल्लभ बोला—दासदान् से क्या मतलब ? मैं बोला—मैय-दासदान, दासोऽहम्दान्।)

सिद्धि का मूल्य

योग-साधना से सिद्धि प्राप्त होती है, पर वह मुक्ति नहीं। वह तो मुक्ति के मार्ग में रोड़ा है। उसका मूल्य ही कितना ? रामकृष्ण परमहंस ने एक योगी का किस्सा सुनाया है। उसने बीस बरस की साधना के बाद सिद्धि प्राप्त की और पानी पर से पैदल चलना आया और बोला—देखो, मैं कैसे पानी पर चलकर आया ! उस पर रामकृष्ण बोले—यह क्या योग है ? यह क्या मुक्ति ? दो पैसे देकर नाव में बैठकर वह नदी पार कर सकता था। उसके लिए बीस बरस की साधना की क्या जरूरत ? बीस बरस की साधना की कीमत दो पैसे !

मेरा बाल्यकाल का योग-साधन

जब मैं छोटा था, माँ गर्मी की छुट्टियों में कोंकण जाती थी। मैं और पिताजी बड़ोदा में रहते। पिताजी दफ्तर जाते और मैं अकेला घर रहता। उस वक्त मैं नल की छोटी धारा सिर पर छोड़ लेता। ब्रह्मरंध्र पर सतत धारा के पड़ने से कुंडलिनी जागृत होगी, यह धारणा थी मेरी। इसी समय अरविंद के भाई बारींद्र घोष के बारे में अखबार में प्रकाशित हुआ था कि वह जेल में योग-साधना करता है। कहा जाता था कि उसका आसन जमीन से फुट-आधा फुट ऊपर उठा करता। मैंने भी कोशिश की, पर आसन क्यों ऊपर उठने लगा ! जांघों को यथासंभव ऊपर उठाता, पर जघन वैसे ही जमीन पर टिका रहता। तो भी मैंने समझ लिया कि उसे छोड़कर भी ५० फीसदी सफलता मिली। (बारींद्र का यह योगसाधन था सिर्फ अंग्रेजों को भगाने के हेतु।) मैं भी योगी बनने की ऐंठ में इठलाता फिरता। इतना ही मेरा योग रहा।

मेरा ज्ञानेश्वरी पठन

वैसा ही मेरा ज्ञानेश्वरी का पठन। १६ वें बरस में, १९११ में, मैंने पहली बार ज्ञानेश्वरी पढ़ डाली। तब वह कुछ भी समझ में नहीं आती थी, पर पढ़ चुकना ही भूषणास्पद था। उस समय मैंने एकनाथी भागवत भी

पढ़ लिया था। वह कुछ-कुछ समझ में आता था। आगे चलकर सन् १९१६ में २१ साल की उम्र में ज्ञानेश्वरी बार बार पढ़ डाली। उस वक्त मेरी ग्रहण-शक्ति काफी बढ़ गई थी।

नरेगल की राहपर,
१७-१२-५७

: ३८ :

बुरे विचारों का निर्मूलन

विकारों का सप्रेशन तथा ऑप्रेशन

इसके अनंतर गोविंदभाई ने पूछा—

१. मन में अच्छे विचार अचानक आ टपकते हैं, बुरे विचार भी। सो क्यों और कैसे ?

विनोबा—पूर्व-संस्कारों के कारण आते हैं। पूर्वजन्म के कारण भी कई आते हैं। चालू जन्म के भी रहते हैं। मन में भी वासनाएं भरी रहती हैं। परिस्थिति का भी असर होता है।

एक सज्जन बीमारी में बडबडाने लगे। वह इतनी अश्लील भाषा बोलते थे कि सुननेवाले अचंभे में आते। वह अतीव सभ्य और भद्रपुरुष थे।

उसकी हमें मदद करनी होगी। उसके साथ हमदर्दी रखनी चाहिए। उनसे घृणा कतई न करें। उन्होंने प्रयत्नों से अपने वासना-विकारों को सर नहीं उठाने दिया। यह उसका पराक्रम है।

पर आज के मनोवैज्ञानिक कहते हैं—

"विकारों का सप्रेशन (दबाना) करना नहीं चाहिए। विकारों को दबाना, रोक रखना ठीक नहीं।" पर यह विचार गलत है। उनको 'सप्रेस' नहीं करना है तो क्या वे हमें ऑप्रेस कर डालें? उनके वश में हो जाय? उनका शिकार बनें? विकारों को स्वैर होने देना पराक्रम-शून्य बनना है!

सौंदर्य-मात्र भगवत्सौंदर्य लगे

२ सुंदर फूल देखते ही उसे नाक मे ठूसना, बालों में खोंस देना 'क्रूड', बहशी है। उसमें पवित्रता तथा प्रसन्नता निर्माण होनी चाहिए।

सुन्दर स्त्री को देखते ही भोग की वासना क्यों पैदा हो? पवित्रता का प्रादुर्भाव क्यों न हो? जब कल्याण के सूबेदार की बहू शिवाजी के सामने उन्हें अर्पण करने लाई गई तब वह क्या बोले? "आपके समान मेरी मा सुंदर होती तो मैं भी सुंदर बन जाता।" सौंदर्य को देखकर ऐसी धारणा हो कि वह भगवत्सौंदर्य है, पवित्र है।

तामिलनाड मे चद्रशेखर की लडकी तथा श्रीरंगपट्टण में एक नटी ने मेरे सामने नृत्य किया। उसे देखकर मुझे लगा कि नटराज श्रीकृष्ण ही नाच रहा है मेरे सामने। गीतगोविंद का वह अभिनय था। कृष्ण और राधा का वह अभिनय था। पर बाद मे मालूम हुआ कि उस लडकी के पीछे लडके पड़े थे।

स्थूल उत्तान शृगार के अश्लील बताकर खिल्ली उडाते हैं, पर उससे भी बढकर अश्लीलता रहती है, विकृतता रहती है ध्वनित या सूचित शृगार मे।

वासनाएं अंतर में रहती हैं, सृष्टि मे कामवासना खुलेआम दिखाई देती है, साहित्य उसे उभाड देता है, इससे मन मलिन हो जाता है। पर निग्रह से विकारो का शमन करना चाहिए।

सर्वं मनोनिग्रहलक्षणान्तां । परो हि योगो मनसः समाधिः ।

नरेगल की राह पर,
१६-१२-५७.

: ३९ :

अंतिम अवस्था अनेकविध संभवनीय

मैं—इस्लाम में मुक्ति की क्या कल्पना है?

विनोबा—इस्लाम मे रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत जैसी कल्पना है। (आदम खुदा नहीं, खुदा के नूर से आदम जुदा नही)।

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः॥

इसके समान ही उनकी मुक्ति की कल्पना है।

मैं—मुक्ति अगर अहं-मुक्ति है तो फिर द्वैत की गुंजाइश कहां रही? सलोकता, समीपता, सरूपता तथा सायुज्य चार मुक्तियां वर्णित हैं, पर सायुज्य ही सच्ची मुक्ति है। बाकी सब नाममात्र की मुक्तियां हैं।

विनोबा—मुक्ति से इंद्रिय सुखविनि:स्पृहता ही समझनी चाहिए। अंतिम अवस्था अनेकविध हो सकेगी। इसके अलावा एकविध अवस्था का अनुभव व्यक्ति-व्यक्ति के लिए अनेकविध हो सकेगा। पानी एक है, वह हिम प्रदेश मे गर्म मालूम होगा तो उष्ण प्रदेश में शीत। ईश्वर-ज्ञान अनन्त है। उसे अपने अनुभव से सीमित कैसे किया जा सकता है?

हावेरी के मार्ग पर,
१९-१२-५७

: ४० :

कणिका—४

डा अनंतरामन् से चर्चा हुई। चर्चा करने से पहले विनोबा बोले—

सरकारी कर्मचारी क्या कर सकेंगे

धारवाड़ के असिस्टेंट कमिश्नर मेरे पास आकर बोले—"हम आपकी

क्या सेवा कर सकते हैं, बताइये।" मैंने बताया—"सरकार की ओर से जो करना है उसे तो आप करेंगे ही। पर व्यक्तिगत, आप क्या कर सकते हैं, बताता हूं। १. आप संपत्तिदान कर सकते हैं। २. साहित्य-प्रचार किया जा सकता है। ३. ग्रामदानी गांवों में जाकर उनको बधाई देते हुए उन्हें उत्साहित कर सकते हैं। यह आप कर सकेंगे और मेरी अपेक्षा है कि आप इतना करें।

शहरों का कार्य

अनंतरामन्—सर्वोदय-विचार के लिए हम शहरों में क्या करें?

विनोबा—अच्छा सवाल किया आपने। शहरों की उपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा। शहरों की स्थिति विशिष्ट होती है। वहां शिक्षित समाज रहता है। देहात में काम करनेवाले सेवक वहां काम नहीं आयेंगे। शहर में काम होना ही चाहिए। मैंने भारत भर के छः शहर चुन लिये हैं—बेंगलूर, बंबई, बड़ौदा, कटक, काशी और गया। बेंगलूर में दक्षिण तथा उत्तर भारत का समन्वय है, दुनिया भर के लोग भी वहां आते हैं, रहते हैं। इसलिए वह अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र है। आबोहवा की दृष्टि से भी वह अच्छा है।

बंबई बड़े शहर का नमूना है। वहां भारत भर के सब राज्यों तथा भाषाओं के और विदेशी भी लोग हैं। वह कॉस्मॉपॉलिटन है। बड़ौदा मध्यम शहर का नमूना है, वह एक सांस्कृतिक केन्द्र है। कटक कोरापुट जिले के ग्रामदानी सघन क्षेत्र का निकटतम स्थान है। वहां नवबाबू कार्य कर रहे हैं। काशी विद्या का केन्द्र है, वहां हिन्दू युनिवर्सिटी है। भारत भर के लोग वहां आते हैं। गया बौद्धों का बड़ा तीर्थ-क्षेत्र है। इस प्रकार मैंने छः शहर चुन लिये हैं। वहां सर्वोदय का, मुख्यतः शान्ति-सेना की स्थापना का काम होना चाहिए।

अनंतरामन्—पर हम पूर्ण समय नहीं दे पायेंगे तो हम शान्ति-सैनिक कैसे बन सकेंगे? या हमें अपना चालू काम छोड़ देना पड़ेगा?

विनोबा—शुरू से ही अपना काम छोड़ने की आपको जरूरत नहीं। आप हर रोज दो घंटे दे सकते हैं। आप लोगों की सहायक शान्ति-सेना हो सकती है, बेंगलूर में दो हजार शान्ति-सैनिक और पांच हजार सहायक

सैनिक चाहिए। हिंसा-विरोधी और वैधानिकता से अलग, यह हमारी योजना रहेगी।

शहर में १. शांतिसेना, २. सहायक शांतिसेना, ३. साहित्य-प्रचार, ४. संपत्तिदान और ५. सर्वोदय-विचार के अध्ययन तथा परीक्षा का केन्द्र, ये काम होने चाहिए।

... ...

खादी ही क्यों ?

प्रश्न—एकादश-व्रतो मे स्वदेशी एक व्रत है। अब मिल का कपड़ा भी स्वदेशी है और खादी भी। फिर खादी का ही आग्रह क्यों ?

उत्तर—स्वदेशी है, इसलिए विष खाना बुद्धिमानी नही है। १०० फी-सदी स्वदेशी विष खाकर सौ फीसदी मौत को क्या गले लगाना है ?

मेरी चले तो मैं सब मिलें बंद करके खादी सार्वत्रिक कर दूं। आज केवल एम्प्लायमेंट का सवाल नही, अंडर-एम्प्लायमेंट का सवाल उससे भी बड़ा है। उसे हल करने के लिए खादी जैसा समर्थ उद्योग दूसरा नही। दूसरा कोई दिखा दे तो मैं खादी छोड़ने को तैयार हूं। मेरा चैलेंज है और वह आज भी कायम है। गत चालीस वर्षों में ऐसा दूसरा उद्योग दिखाने में कोई समर्थ नही हुआ।

स्त्रियों के सब उद्योग-धंधे अब पुरुषों ने छीन लिये हैं। पीसना, कूटना, धाना, कताई, वस्त्रोद्योग सब स्त्रियो के काम थे। उन्हे अब पुरुष चलाते हैं। स्त्रियों के लिए अनुकूल ये काम उनके जिम्मे छोड़कर पुरुषो को दूसरे कठिन काम करने चाहिए।

आज चपरासियो को खादी की वर्दी दी जाती है, पर वरिष्ठ नौकरों को नही। जब मैं दिल्ली में था तब इन सब सनदी नौकरों की, खादी की अनिवार्यता मान्य करने की तैयारी थी। पर उन्हे वैसी सूचना नही मिली। फल यह हुआ कि खादीधारी मिल के सूट-बूटवाले को सलाम कर रहा है, यानी यह हुआ कि खादी मिल की महरी बन गई।

आखिर खादी ही चलेगी, मिल नही। आबादी बढ रही है, हर साल आधा फीसदी। इस बढती जनसंख्या को कौन-सा काम देंगे ? दुनिया को [illegible] अपनानी पड़ेगी।

परिवार-नियोजन

प्रश्न—फैमिली प्लॉनिंग के बारे में आपकी राय क्या है ? सरकार उसपर लक्षावधि रुपये खर्च कर रही है।

उत्तर—उससे अनैतिकता, स्वैराचार ही बढ़ जायगा। प्रजा निर्वीर्य बनेगी। आज गार्हस्थ्य १८ से ५८ की उम्र तक प्रायः चलता है। ४० साल की यह अवधि २० साल की की जाय, याने २५ से ४५ तक रहे।

इग्लैंड में हर वर्ग मील में २७५ लोग रहते हैं। हिन्दुस्तान में उससे अधिक नहीं है। इसलिए प्लैनिंग करना हो, तो वीर्यसंग्रह की ही दृष्टि से, वीर्य-हानि की दृष्टि से नहीं।

१०० वर्ष की मानवी आयु मानी जाय तो गृहस्थाश्रम के हिस्से में २५ वर्ष आते हैं, पर आज १०० की आयु कल्पना में ही रही है। ८० वर्ष ले सकते हैं, वह तो पहुंच में है। उसका बटवारा पच्चीस, बीस, पच्चीस और दस यों किया जाय। पच्चीस साल ब्रह्मचर्य, बीस साल गार्हस्थ्य, पच्चीस साल वानप्रस्थता, दस साल सन्यास। पैंतालीसवें साल में वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करने से समाज-सेवा के लिए बड़ी तादाद में सेवक मिलेंगे।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य की प्रेरणा से समाज-सेवा जिस प्रकार हो सकती है, उसी प्रकार प्रेम-प्रेरणा से क्यों नहीं हो सकेगी ? आप प्रेम-प्रेरणा को हीन क्यों मानते हैं ?

उत्तर—हिन्दू धर्म में गृहस्थाश्रम की जो प्रतिष्ठा है, वह और किसी धर्म में नहीं, न ज्यू धर्म में है, न कैथॉलिक पथ में।

हिन्दूधर्म ने संतानोत्पत्ति के हेतु स्त्री-पुरुष समागम को धर्म माना है। तदितर सम्बन्ध स्वैराचार है। प्रेम के नाम पर विषयासक्ति को मान्यता नहीं दी जा सकेगी। प्रजोत्पादन को छोड़ पति-पत्नी तथा भाई-बहन के प्रेम में कितना अन्तर है ? और प्रजोत्पादन के लिए जिन्दगी भर में तीन बार या चार बार ? किसान को अगर बोआई दूसरी बार करनी पड़े तो बड़ा बुरा लगता है। मानवीय वीर्य की कीमत क्या अनाज के दाने के बराबर भी नहीं ?

प्रश्न—शरीर-सम्बन्ध, शरीर-सम्पर्क क्या मनुष्य के शारीरिक मान-

सिक विकास के लिए, समाधान के लिए आवश्यक नही ?

उत्तर—शारीरिक संपर्क कोई आवश्यकता नही। प्रेम मानसिक भावना है। दूध पिलाना, रक्षा करना, आशीर्वाद देना, बोलना आदि बातों की जरूरत होगी। पर प्रेम दिखाने के लिए चुबन की क्या आवश्यकता? बालक उसे पसंद भी नही करता। रोग फैलाने का वह अच्छा साधन है। वास्तव मे तो गाल केवल पोछ या धो लेने से काम नही चलेगा। उसे डिस-इन्फेक्ट करना होगा।

प्रश्न—गीता मे कहा है—'धर्मविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ'।

उत्तर—पर उसका आशय यही है कि प्रजोत्पादन के ही लिए स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध धर्म है। शंकराचार्य तो उसे भी नही मानते। धर्म के अविरुद्ध काम याने 'अशनपानादिकम्' उन्होने बताया है।

प्रश्न—तो फिर आदमी को स्थितप्रज्ञ ही बनना पड़ेगा।

उत्तर—नहीं तो, अर्जुन 'किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत् किम्' इस प्रकार क्यों पूछता ? स्थितप्रज्ञ का बर्ताव सहज रहता है, हमें प्रयत्न से उसे अपनाना चाहिए। उसका अनुसरण हमें प्रयत्नपूर्वक करना पड़ेगा।

संतानहेतुविरहित स्त्री-पुरुष-सगम व्यभिचार है। इसलिए बचपन से ही सबको संयम की शिक्षा देनी चाहिए। आज तो उल्टी बात हो रही है। सिनेमा क्या है ? भूभारावतरण के लिए परमेश्वर का अवतार ही है मानो। संयम के अभाव में लोग मर जायगे। और क्या होगा ? दिल्ली की महिलाओं की माग थी कि सिनेमा पर रोक लगाई जाय। इलाहाबाद म्युनिसिपालिटी ने सरकार की ओर प्रस्ताव भेजा था कि सिनेमा का दूसरा शो बंद किया जाय। पर सरकार ने उसे मंजूरी नही दी। समझ मे नहीं आता कि उसने अपने पदों से इस्तीफा क्यों नहीं दिया ? जनमत का यह अनादर ? सत्याग्रह की जरूरत थी।

हावेरी के मार्ग पर,
१६-१२-५७

: ४१ :

बाबाजी के पिताजी

बंगाली संगीत सपन्न हुआ। यद्यपि हम उसकी सराहना करते है तो
भी गानेवाले लोग बिल्कुल मामूली है। एक भी सुरीला कंठ नहीं। सब
मिलकर ठीक गाते है सो भी बात नहीं। फिर भी न कुछ से कुछ बेहतर
है। यह सोचकर उसे ठीक माना जाता है। संगीत के बाद मौन रहा और
थोड़ी देर बाद विनोबा बोले—फिजिक्स और केमिस्ट्री पिताजी के विष
रहे। रगाई के प्रयोग करना वह चाहते थे। उस विषय में वह अनुसधा
कर रहे थे। इस कारण उन्होंने अपनी पहली हैडक्लर्क की नौकरी से इस्तीफ
दे डाला, क्योंकि उसमें तबादला होता था। अनुसधान का यह काम ए
स्थान पर स्थिर रहकर करना चाहिए था। इसलिए एक नौकरी छोड़क
बड़ौदा में खानगी खाते में नौकरी स्वीकार की। प्रयोगार्थ वे कपड़े के छो
छोटे टुकडे रगा करते थे। कभी-कभी मा को दिखाते थे। मा कहती
आपने सैकडो टुकडे रग डाले, पर मेरी एक साड़ी नही रग सके। वह कह
तुम्हारी एक साड़ी जग की रगाई में रग जायगी। यह प्रयोग है। सिद्ध
गया तो दुनिया का काम बन जायगा। जब कहा जाता कि वह ये प्र
सस्था में करें तो कहते—प्रयोग सफल हुआ तो ठीक होगा, नही तो स
को लगेगा कि पैसा बरबाद हुआ। मैं यह नही चाहता, इसलिए अपनी
से खर्च करके प्रयोग कर रहा हू। सफल हो जाय तो दुनिया का लाभ
न हो जाय तो मेरी ही हानि होगी। मेरे पास जो थोड़ा-सा पैसा है,
से अपने प्रयोगो के लिए खर्च कर रहा हू।

मैं—पिताजी विज्ञान के उपासक थे। उनका सारा घर ही
शाला थी। समूचे जीवन की ओर वह वैज्ञानिक दृष्टि से देखा कर
मुझे वह बुद्ध-विचार-वाले लगते है।

विनोबा—पिताजी कथा-कीर्तन मे जाते थे और हमे भी ज
बताते।

में विविध प्रयोग पिताजी ने किये। उन्हें बेचने के लिए हमे बाजार भी भेजा। वह निरतर काम मे मशगूल रहते। सन् १९१५ मे मैं घर छोड़ चला गया और तीन वर्ष बाद याने १९१८ में माँ इन्फ्लुएजा से चल बसी। उसके बाद बालकोबा और शिवाजी भी आश्रम मे चले आये। तब वह अकेले रहे। उसके बाद उन्होने सगीत की साधना शुरू की।

मैं—पर उसमे भी उनकी दृष्टि रजन की अपेक्षा शास्त्र-सेवा की अधिक रही, ऐसा दिखाई पड़ता है।

विनोबा—हा, उन्होने किसी मुसलमान सज्जन से संगीत की चीजें और बोल, जो शायद उसीके साथ समाप्त हो जाते, लिख लिये और संशोधन के बाद उन्हे पुस्तक रूप में प्रकाशित किया।

मां की आखिरी प्रसूति में उसे तकलीफ हुई, इसलिए उसने पिताजी को सुझाया कि वह ब्रह्मचर्य का पालन करे, जो उन्होने मान लिया। यह रही १९१३ की बात। उस वक्त उनकी उम्र ३९ साल की थी। तबसे १९४७ यानी उनकी मृत्यु तक वह वानप्रस्थ-वृत्ति से रहे। पिताजी के लिए मा के दिल में बड़ी आदर-भावना थी। हर भारतीय स्त्री अपने पति के बारे मे प्रेमादर रखती ही है। पर पिताजी की उदारता के कारण मा उन्हे विशेष आदर की दृष्टि से देखती थी।

मैं—अपने लिए दूसरे को जरा-सी भी असुविधा न हो और दूसरे की यथाशक्ति याने शक्ति के अंत तक सेवा-सुविधा अपने हाथ होती रहे, यह था पिताजी का स्वभाव। मन-वचन-कर्म से परोपकारशीलता उनका विशेष गुण था। मैने एक बार उन्हें लिखा था कि आश्रम-सगीत के लिए मराठी पद अपने जाने हुए भेज दें। उन्होने बाजार मे जाकर खोज-खोजकर मराठी पदो की पुस्तिकाए भेज दी थी। जब मगनवाड़ी आये थे तब अपनी जरूरत का सारा सामान अपने साथ ले आये थे।

. विनोबा—जमनालालजी एक बार साबरमती आये थे। लौटते वक्त उन्होने सोचा कि पिताजी से मिलकर चले जायं। वैसा उन्होने लिख भी दिया। जमनालालजी का प्रबन्ध अच्छा हो, कोई असुविधा न हो, इसलिए एक मारवाड़ी के यहा जाकर समझ लिया कि उसका भोजन कैसा रहता है, कौन-कौन-सी चीजें आवश्यक हैं, कैसे परोसा जाता है, आदि। बाजार

जाकर चावल, गेहूं, दाल ले आये। ये चीजें उनके खाने में नहीं आती थी। घर लाकर उन चीजों को साफ किया। गेहूं खुद ही पीस लिये, फुल्के बनाये, घी, पापड़ आदि सब करीने से रख दिये। तांगा लेकर जमनालालजी को स्टेशन से ले आये। उनका भोजन हुआ और विश्राम के बाद वह शाम की गाडी से वर्धा लौट आये। आने के बाद मुझसे मिले, तब उन्होंने कहा—ऐसा प्रेममय आदमी मैंने कभी नहीं देखा। यह कहते हुए उनकी आंखें डबडबा आई। वह बोले—जानकीदेवी इससे अधिक क्या कर सकती। मुझे लगा कि मैं घर पर ही हूं। मैंने पूछा, "भोजन किसने पकाया?" तो वह बोले, "सबकुछ मैंने ही किया है। तब तो मैं बिल्कुल पिघल गया।"

पिताजी ने हमारे लिए उद्योग और मितव्ययिता से बीस हजार रुपये रख छोड़े थे। हमने उनसे एक कौडी की भी अपेक्षा नहीं रखी थी, तो भी न्याय-बुद्धि से वह रकम उन्होंने हमारे लिए रख छोड़ी और हमें लिखा कि उसे हम स्वीकार करें। पर हमने इन्कार किया, जिसका उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। आखिर उनकी मृत्यु के बाद बैंक में से वह रकम निकाल लेनी पड़ी और अब वह 'ग्रामसेवा मंडल' के पास पड़ी है। उनकी रंगाई-विषयक सैकडों रुपयों की किताबें पवनार में पड़ी हैं।

मां पिताजी को बड़े आदर की दृष्टि से देखती थी, तो भी उसका मुझपर ज्यादा विश्वास था। उसे एक लाखचावल गिनते हुए देखकर पिताजी बोले—"यह तुम क्या कर रही हो? एक तोला चावल ले लो। उसमें कितने चावल रहते हैं देखो और उस हिसाब से एक लाख चावल गिन लो। ऊपर और आधा तोला डाल दो, ताकि संख्या अधूरी न रहे। थोड़े दाने ज्यादा हो गये तो हर्ज क्या है?" इसपर वह कुछ नहीं बोली। वह कुछ जवाब नहीं दे सकी। मेरे घर आने पर वह बोली, "विन्या, कहो न इसमें क्या राज है।" मैंने कहा, "वह तो गणित का सवाल नहीं, वह है भक्ति। संतो और ईश्वर के स्मरण के लिए वह काम किया जाता है।" रात को उसने पिताजी को बता दिया। मां हमारी भक्तिमती थी। बड़ी वैराग्यशालिनी भी थी।

प्याउगी के मार्ग पर,
२०-१२-४७

: ४२ :

कणिका–५

मन, बुद्धि और चित्त

मैंने पूछा—वेदान्त में मनोनाश शब्द पाया जाता है, पर योगशास्त्र मे चित्तवृत्ति-निरोध। दोनों में कुछ दृष्टिभेद जरूर है, वह कौन-सा ?"

विनोबा—वेदान्त का मनोनाश वृत्तिनाश ही है। मन अन्त.करण की एक वृत्ति मानी गई है।

मैं—चित्त-चतुष्टय शब्द-प्रयोग मिलता है। ये चार चित्त कौन-से ? चित्त मूल वस्तु है, जिसकी विविध शक्तिया मन, बुद्धि और अहकार हैं। यह है मेरी राय।

विनोबा—वह तो ठीक है। कही अन्त.करण पचक का शब्द-प्रयोग पाया जाता है। पाच अन्तःकरण तथा पाच बाह्यकरण याने इद्रिया, ऐसी कल्पना की जाती है। यहा अन्तःकरण मूल वस्तु और मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार उसकी विविध शक्तियां हैं। यहां मानना पड़ेगा कि एक ही मन के दो हिस्से—चित्त तथा मन—कल्पित हैं।

गीता मे मन और बुद्धि को मिलकर ही चित्त शब्द का प्रयोग किया गया है।

> मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
> निवसिष्यसि मय्येव अतऊर्ध्वं न संशयः॥
> अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
> अभ्यास-योगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय॥

यहां पहले श्लोक मे 'मन, बुद्धि' दो अलग-अलग शब्द हैं और दूसरे में इन दोनो के बदले एक ही शब्द 'चित्त' रखा गया है।

... ...

संतो का अध्ययन

मैं—रामदास का अध्ययन वास्तव मे अधिक रहना चाहिए, पर दास-बोध देखकर ऐसा नही लगता। तुकाराम का अध्ययन गंभीर मालूम

होता है।

विनोबा—नही। रामदास का अपने हाथ से लिखा हुआ रामायण उपलब्ध है। उनका अध्ययन गहरा था। तो भी उनका चेला कल्याण ज्यादा पढा-लिखा नही था। उसने 'माहमाया' लिखा है। तुकाराम के अभग आज शुद्ध जान पडते हैं। पर जगनाडे की वहिया देखने पर मालूम होता है कि भाषा कितनी अशुद्ध है। फिर भी तुकाराम ने गीता, भागवत, रासकर एकादश स्कध, एकनाथी भागवत तथा ज्ञानेश्वरी के पारायण किये थे। नामदेव, ज्ञानदेव और एकनाथ के अभग उसने कंठस्थ किये थे। कबीर भी उसे ज्ञात था। अपने हाथ की लिखी गीता उसने अपने दामाद को भेट दी थी।

मैं—न र. फाटकजी कहते हैं कि ज्ञानदेव भी सस्कृत की अच्छी जानकारी नही रखते थे।

विनोबा—ज्ञानदेव का अध्ययन गहरा था। उपनिषद, योगशास्त्र, शकर, रामानुज, योगवासिष्ठ, भारत आदि ग्रथो का अध्ययन उन्होने किया था। गणेशजी के रूपक मे जिन ग्रथो का निर्देश उन्होने किया है, उनका अध्ययन उन्होने जरूर किया होगा।

मैं—'वार्तिक' क्या है? "बौद्धमत-संकेतु वार्तिकाचा" इस वचन मे उसका उल्लेख है।

विनोबा—वार्तिक से वृत्तिकार सुरेश्वराचार्य आदि द्वारा लिखित बौद्धमत-खडनात्मक शाकर-भाष्य के टीका-ग्रथ निर्दिष्ट हैं।

.. .. ..

पचीकरण

विनोबा—पंचदशी आदि ग्रंथों में जो पचीकरण-प्रक्रिया पाई जाती है, जिसका विवरण रामदास ने किया है, वह वेदान्ती केमिस्ट्री ही है। उसे मैं बहुत महत्व नही देता। फिर भी तिलक ने 'गीतारहस्य' में कहा है कि यह प्रक्रिया महत्व की है। पर उसमे जो पाच महाभूत (पचतत्व) हैं, उन्हे महत्वपूर्ण समझने का कारण नही, क्योकि मूलतत्व पाच ही नही हैं, विज्ञान की बदौलत उनकी सख्या अस्सी-नब्बे तक पहुच गई है (आज यह सख्या निरानवे है। ९३वी धारा की शासन-प्रणाली से मैंने यह सख्या याद की है)। फिर भी तिलक का यह मतव्य गलत है। जबतक पाच

इंद्रिया है, तवतक पच महाभूतों से परे ज्ञान नही जा सकता। वह विश्लेषण अवाघ्य ही है।

दो परंपराए—सन्त और भक्त

विनोवा—भारत मे दो परम्पराएं हैं, एक सन्त-परम्परा और दूसरी भक्त-परम्परा। जो निर्गुणिया कहलाते हैं वे सन्त हैं। कबीर, नानक, दादू, आदि सन्त-परम्परावाले हैं, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई आदि भक्त-परम्परा में हैं। सन्त-परम्परा का सूत्रपात बौद्धों के वज्रयान पंथ तथा गोरखनाथ से होता है। वे जाति-पाति के खिलाफ क्रांतिकारी विचारवाले थे। बौद्ध आक्रमण की प्रतिक्रिया के रूप में भक्त-परम्परा का आविर्भाव हुआ। उसका उद्‌भव द्रविड़ प्रदेश में हुआ। रामानुजाचार्य के पूर्ववर्ती तमिल शैव और वैष्णव ग्रथों से उसको परम्परा प्रारम्भ होती है। द्रविड प्रदेश से कर्नाटक, कर्नाटक से महाराष्ट्र और वहा से उत्तर भारत इस प्रकार भक्ति-सप्रदाय का प्रसार हुआ है। सब आचार्य द्राविड हैं। उन्होने काशीतक उसे पहुचाया, जहा से समूचे भारत मे उसका प्रचार-प्रसार हुआ। पुराने तमिल ग्रन्थवचनो के आधार पर तथा पुराने वैष्णव भक्ताचार्यों को आधारभूत मानकर रामानुजाचार्य ने अपने भाष्यों की रचना सस्कृत मे की है।

. . . . . .

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

मैं—गांधीजी द्वारा पुरस्कृत ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त आध्यात्मिक है या एक व्यावहारिक युक्ति मात्र ?"

विनोवा—मैं उसे आध्यात्मिक मानता हू। वह व्यावहारिक युक्ति नहीं है। येलवाल मे जो नेतागण उपस्थित थे, उन्हें विद्यार्थियों की भांति मैंने यह विषय समझा दिया। ट्रस्टीशिप की दो कसौटिया मैंने उन्हे बताई। (१)पाल्य की चिंता अपने से भी अधिक मात्रा में करना और (२) जल्द-से-जल्द सब अधिकार उसके सुपुर्द कर देना। इस दुहरी कसौटी पर आज [illegible] और धनिकशाही को कसकर देखिये तो यह दिखाई देगा कि [illegible] की हिमायत या दावा कितना खोखला है।

[illegible] : प्रातःकाल घूमने के समय,

१२-५७

: ४३ :

सम्मेलन और क्रांति

क्याउगी में दो दिन ठहरने के बाद जब पदयात्रा फिर से चल पड़ी तब हमारे दल में रावसाहब पटवर्धन, गोविन्दरावजी देशपांडे, बाबूलालजी गांधी, डोनाल्ड ग्रुम, आर्थर गोल्ड (अमरीकी ज्यू कुमार), अमरीकी दम्पती ग्रंटने बॉलगर्ट व डोरोथी बॉलगर्ट, वल्लभस्वामी तथा बंगाली लोग थे। फ्रीडा हाउसवेल दास, जो मूल में जर्मन थी, अमरीका में बसीं और अब भारतीय बनी एक वृद्धा हैं, हमारे साथ कल थी, पर क्याउगी से वह लौट गई।

प्रारम्भ बंगाली गीतों से हुआ। विनोबा वल्लभस्वामी के साथ बोल रहे थे। उन्हें अपना सर्वविचार बतला रहे थे। गन्तव्य ग्राम चार ही मील दूर था, सो सिंदूर पहुंचने के पहले दो फर्लांग के फासले पर एक खेत में हम बैठ गये। सूर्योत्थान के बाद विनोबा रावसाहब से बोले—

"कैसा है सर्वविचार, रावसाहब? बोलो, वल्लभ।"

वल्लभस्वामी—सम्मेलन व्यक्तिनिष्ठ न रहे। उसकी आवश्यकता भी अब नहीं रही। शान्ति के दर्शन में भी वह मेल नहीं खाता। देश में कहीं भी सम्मेलन मनाया जा सकता है। जरूरत नहीं कि विनोबा वहां जाय। पूर्वी में मालोमी संघ का सम्मेलन सम्पन्न हुआ। विनोबा ने अपना सन्देश उनके लिए भेजा। सम्मेलन सफल हुआ। ऐसा होना चाहिए। अप्पासाहब के कार्यक्षेत्र रत्नागिरी में सम्मेलन हो तो अच्छा होगा। पर अप्पासाहब राजी नहीं हुए।

देशपांडे—अप्पासाहब ने लिखा है कि रत्नागिरी में सम्मेलन हो सकता है।

विनोबा—मुझे केरल जाने की प्रेरणा मिल रही है। वहां केलप्पनजी केरल की सोसाइटी बनाने का प्रयास कर रहे हैं। राजम्मा ने लिखा है—आपके आने की नहीं है। क्रांति हुआ रही है। चार महीने केरल में रहिये। बाद, बराबर दरम्यान में तामिलनाड चले जाय। केरल में सम्मेलन की

आयोजना फिर से करने में कार्य मे बाधा होगी। केरल से आंध्र मे कड़प्पा भी जाया जा सकता है।

क्राति का मेरा एक गणित है। शासनमुक्त समाज बनाना है। उसके आगे और सवाल ठहर नही सकते। व्यापक विचार दो ढंग का हो सकता है। एक, पण्डित नेहरू की भाति दुनिया से सम्पर्क रखकर; दूसरा, मेरी भाति दुनिया से अलिप्त रहकर। दोनो दृष्टियों से विचार करने से संकुचित धारणा नष्ट हो जाती है और कांग्रेस मे जो अन्दरूनी छोटे-छोटे झगड़े हो रहे हैं, उनकी क्षुद्रता ध्यान मे आ जाती है। क्राति के लिए मुक्त चिन्तन की जरूरत है। इसलिए सम्मेलन का गठबन्धन मुझसे बनाये रखने की आवश्यकता नही है।

कर्नाटक में तीन महीने बिताये। उसके पहले तीन हजार ग्रामदान मिले थे, अब और तीनसौ पचास मिले हैं। हजारो-लाखो ग्रामदान होना बाकी है। एक पुराना वचन 'तुम्हारी जमीन छीन ली जायगी' वग ने उद्धृत किया है, पर इससे क्या ग्रामदान मिल सकेंगे? इसका मतलब होगा उन्हें ग्रामदान से परावृत करना। आज विचार आगे बढ चुका है। कर्नाटक में सम्मेलन की बातें हो रही हैं। उसके लिए दौड़ेंगे निजलिंगप्पा की तरफ, हमारी तरफ या उसकी तरफ!

वल्लभस्वामी—पर हम मागते क्या है? ऐसी बड़ी यात्राओं के स्थान पर प्रबन्ध करना उन्हींका काम है।

विनोबा—पर उस काम मे कौन अगुआ बनते हैं, कौन प्रयास करते हैं? वे, जिनका प्रभाव बढ़ना खतरनाक है। वे सकाम हैं और बुरी तरह सकाम हैं। किसी-किसीकी सकामता अच्छी भी होती है।

गोविन्दराव—क्राति भी एक व्यक्ति से निगडित हो सकती है।

विनोबा—शांति की दृष्टि से भी यह अच्छा होगा कि मुझे कहीं न जाना पड़े। देश के कोने में सम्मेलन सम्पन्न हुआ तो अस्सी हजार लोग इकट्ठे हुए। पवनार जैसे केन्द्रवर्ती स्थान मे लाखों लोग आवेंगे। उनमें कुछ नियमन चाहिए। अलबत्ता यह ठीक रहा। गांधीजी के पश्चात् डर लगता था कि यह सब कैसे टिक पायेगा। यह डर अब नहीं रहा। शिवरामपल्ली-सम्मेलन के वक्त शंकरराव बोले—"आप अगर जाना नहीं

हते तो सम्मेलन व्यर्थ होगा। उस वक्त उनका कहना मैंने माना। पर
वैसी स्थिति नही रही। अब गोविंदराव कह सकते हैं—"आप अपना
काम कीजिये। एस. एम. अपना काम करें। मैं अपना काम करूगा।" इसके
पहले यह कहने की हिम्मत उनमें थी नही। अब शक्ति प्रकट हो चुकी है।
जवाहरलालजी, जयप्रकाशजी उसके बारे में विचार करने लगे हैं।

क्रांति के नये-नये मार्ग ढूढ निकालने चाहिए। संपत्तिदान का कार्य
ठीक नही चल पा रहा है। संपत्ति की प्रतिष्ठा टूटनी चाहिए।

रावसाहब—सम्मेलन को आप बन्धन रूप क्यो मान रहे हैं?

विनोबा—कार्यक्रम निश्चित करना पड़ता है, सात-आठ महीने पहले।
बरसात आदि का भी विचार करना पड़ता है। दक्षिण-उत्तर के मार्गों के
अलावा एक ऊर्ध्व मार्ग भी है। उसमे कोई विघ्न-बाधा नही।

डोनाल्ड कहता है कि यह वस्तु शक्तिशाली है।

चेरियन—आपका यह विचार मुझे ठीक लगता है। ग्रामदान मिल
रहे हैं, पर निर्माण-कार्य नही हो रहा है। आप मुक्त रूप घूमे। क्रांति की
जिम्मेदारी आपकी है। उस दृष्टि से आप मुक्त विहार कर सके तो अच्छा
होगा।

विनोबा—कांटिग्युअस एरिया–सघन क्षेत्र–मिलने पर निर्माण-कार्य
की अनुमति मैं दे दूगा। पर दो-चार ग्राम यहा, तो दो-चार वहा हैं, ऐसी
हालत मे इजाजत नही दी जा सकेगी।

चेरियन—कुछ दिन एक स्थान पर रहा जाय तो कुछ दिन घूमने मे
व्यतीत किये जाय।

विनोबा—एक जगह स्थिर रहने की बात ठीक नही। सम्मेलन के
लिए कुछ नियम बनाये जाय। उदाहरण के लिए, पाचसौ मील के भीतर
ट्रेन से काम न लिया जाय। सम्मेलन के अधिवेशन मे ठीक चार घंटे मेह-
नत का काम हो, आदि। ऐसा कुछ नियमन आवश्यक प्रतीत होता है।

सम्मेलन की आवश्यकता है सही, पर उसका मेरे साथ गठबन्धन क्यों
रहे? मेरी अनुपस्थिति मे अगर सम्मेलन असफल होगा तो यह हो जाय
कि 'आपुले मरण पाहिलें म्या डोळां' अपनी मौत मैंने अपनी आखो देखी।
नेहरूजी के बाद कौन? कांग्रेस बिना नेहरू के बराबर क्या? यह प्रश्न पूछा

जाता है।

चेरियन—उसका उत्तर 'शून्य' नही, 'ऋणयुक्त शून्य' कहना चाहिए।

मैं—क्यो ? ग्रामदानी गावो मे नेहरू पैदा होगे। अपने-अपने गांव का प्रबन्ध कैसा किया जाय, इसका ज्ञान उन्हे प्राप्त होगा।

विनोबा—ठीक है, ऐसा हो रहा है।

गोविंदराव—यह भी हो सकता है कि विनोबा ने क्रांति का ठेका लिया है, हमारे लिए सोच-विचार करने की आवश्यकता ही नही।

विनोबा—उसका मतलब यह कि विनोबा हर साल सम्मेलन मे उपस्थित रहे। चेरियन बीस महीने देश भर मे घूम चुका। यह हिम्मत न करता तो ? उसके साथ चर्चा करने नही बैठा मैं। उसे जाने दिया। केवल चर्चा से वह पस्तहिम्मत हो जाता। उसके घूमने से देश का लाभ हुआ और उसकी हिम्मत बढ गई।

कर्नाटक के ग्यारह जिलों मे घुमक्कडी की। कुछ फल नही निकला। बाबा के जाने पर भी विफलता ही मिली। बाबा को अगर कुछ अहता की बाधा हुई हो तो उसके चूर-चूर हो जाने की नौबत आ गई है।

तामिलनाड मे शुरू-शुरू मे यही हुआ। केरल मे भी यही हुआ। बाद में कसर निकल आई। केरल में केलप्पन मिले। शकराचार्य की प्रेरणा है वह।

सिडेनूर की राह पर,
२२-१२-५७

: ४४ :

कणिका—६

सब आनन्दमय

१ 'सर्वं दुःखं, सर्वं क्षणिकम्' विचार ठीक नहीं। सब आनन्दमय है, यह भाव चाहिए। कई लोगों का यह कहना है। मैं उनका यह कहना जरूर मानूंगा, पर उनको चाहिए कि वे पहले मरना छोड़ दें।

...

एस्केपिस्ट

२. जो सांसारिक कर्म तथा प्रापंचिक उद्योग से निवृत्त हो जाते हैं, एस्केपिस्ट कहकर उनकी खिल्ली उड़ाई जाती है। मैं एस्केपिस्ट हूं। घर में आग लग गई है और कहते हैं कि भागो मत। क्या उसमें जलकर मरना है?

...

युद्ध और शांति-सेना परिणाम

३ शांति-सेना का परिणाम यह होगा कि जो मरने लायक हैं वे मरेंगे (अर्थात् वे जो सत्य और अहिंसा का मार्ग अपनाना नहीं चाहते)। पर युद्ध का परिणाम क्या होता है? जो सबसे लायक होते हैं वे ही मर जाते हैं।

क्लीन बम

४. एक अमरीकी मेरे पास आया था। वह बोला—अमरीका अब क्लीन बम बना रहा है। क्लीन बम वह है जो केवल अपने लक्ष्य का ही विनाश करेगा, पर हवा दूषित करना, औरों को बाधा पहुंचाना आदि नहीं करेगा। मैं बोला—सैकड़ों-हजारों मानवों को पंगु बना दे, जिन्हें खाने को तो चाहिए, पर वे भूमि के भाररूप हों, ऐसा बम 'क्लीन' बम नहीं। बम ऐसा हो कि उसके आघात से कोई भी जिन्दा न रह सके। वही होगा क्लीन बम। पंगुओं को पैदाइश करनेवाला 'क्लीन बम' कैसा?

ग्रामदानी गांवों में शांति सैनिक

५. हर ग्रामदानी गांव मे शातिसेना की उपस्थिति आवश्यक है। एक लाख आबादी के लिए शाति सैनिकों की संख्या बीस रहे। हरेक के साथ वे परिचय प्राप्त करें। वे इस कदर परिचित हो कि कोई भी नि.सकोच-भाव से उन्हें अपना काम सौंप दे। सबके दिल मे उनके बारे में अपनापन महसूस हो।

देहात मे ऐसे लोग होते हैं, जो झगड़े पैदा करते हैं। उन्हें तथा झगड़े-वालों को समझाने शांति सैनिक खुद जायं। नारद जैसे कंस के पास जाते और कृष्ण के पास भी, वैसे ही ये सबके पास जायं। शाति की शक्ति बढ़ाते रहना उनका काम है।

तुम लोगो को मेरी अपेक्षा अधिक तपस्या करनी पडेगी। लोगों की धारणा यह होगी कि तुम लोग पी. एस. पी. वाले हो। मेरे बारे मे यह बात नहीं। मुझे वे सच्चा आदमी मानेगे। इतनी योग्यता प्राप्त करने के लिए तुम्हे बडी तपस्या करनी पडेगी।

...　　...　　...

प्रभु का दरबार लगा हुआ है

६. तुलसीरामायण का उत्तरकाड वाल्मीकि के उत्तरकाड से भिन्न है। रामचन्द्रजी लोगो के साथ अयोध्या से बाहर बगीचे में जाकर वहा उन्हें उपदेश सुनाते बैठे हैं। तुलसीदास ने अपने ग्रथ की समाप्ति इस प्रकार की है। मतलब कि रामचन्द्रजी यहा इस दुनिया मे ज्ञानोपदेश करते हुए विराजमान हैं, उनका दरबार लगा हुआ है। यह कल्पना उसमे है।

सिडेनूर,
२२-१२-५७

: ४५ :

कणिका—७

काचन-मुक्ति का प्रयोग

१ मे—काचन-मुक्ति का विचार लोग ठीक समझ नही पाये है। उसके बिना गाव सुखी नही हो सकते।

विनोबा—ठीक ही है। ग्राम-सेवा-मडल यह प्रयोग करे। वेतन-श्रेणिया हटाई जाय। हरेक को पाच रुपये फुटकर खर्च के लिए दिये जाय। उत्पादन अगर कम हो तो उसे बढाया जाय। चर्खा ग्रादि की कीमत जरा बढाने मे कोई हर्ज नही। वे लोग बुद्धिमान है। उनके जैसी शक्ति अन्यत्र नही दिखाई देती।

रावसाहब—रत्नागिरी जिले मे श्री अप्पासाहब यह प्रयोग चला रहे है, पर सफलता नही मिल रही है। पुराने लोग छोडकर जा रहे है।

विनोबा—इस उम्र मे अप्पासाहब का यह प्रयोग आसक्ति कहलाने लायक है। उनको चाहिए, वह मुक्त विचार-प्रचार करें। मै गोपुरी (वर्धा) मे इस प्रयोग के लिए तीन महीने बिता चुका हू। कठिनाई महसूस होती थी। साम्ययोग का प्रयोग चलाने को लोग तैयार थे, बशर्ते कि मै वहा रह जाऊ, पर यह बहुत बडी कीमत वे माग रहे थे। मैने स्वीकृति नही दी। प्रयोग सफल होने पर भी खतरा था। लोग कहते कि प्रयोग के लिए विनोबा चाहिए। अगर असफल होता तो स्पष्ट ही खतरा था। लोगो ने यह निष्कर्ष निकाल लिया होता कि विनोबा जैसो के होते हुए भी प्रयोग सफल हो नहीं पाया तो प्रयोग करना ही बेकार है। पर मैने वह खतरा नही स्वीकार किया। मै क्यो समझ लू कि ये ही लोग मेरे है ? वह गलत है। मेरा विचार कोई भी अपनायेगा और प्रयोग करेगा। एक जगह सिद्धि नहीं मिली तो क्या और जगह नही मिलेगी ? ऐसा मानना ठीक नही। 'पवनार का ग्रामदान बिना प्राप्त किये आगे बढने का नाम नही लूगा' कहकर मै वही रह जाता तो ? शक्ति रुक जाती। वह आसक्ति हो जाती। उत्साह चाहिए, पर आसक्ति न रहे। मुक्त विचार-प्रचार करना चाहिए।

अकिंचन पुरुष

२. जिनमे लोक-सेवा के अलावा दूसरी कामना नही, जो पूर्णरूप से निष्काचन है, निरिच्छ है, अकिंचन है, ऐसे दो सज्जन मेरे सामने है—एक मनोहर दिवाण तथा दूसरे दादासाहब पंडित। मनोहरजी प्रवृत्ति पर है तो दादासाहब निवृत्ति की ओर अधिक झुके हुए।

... ...

शिवाजी का पुनरवतार

३. *तिलक से एक बार पूछा गया, "क्या महाराष्ट्र मे फिर से शिवाजी का अवतार होगा ?"*

उन्होने बताया—नही। जिस महाराष्ट्र मे शिवाजी अवतीर्ण हुए, वह निरभिमान था। जहा लोग अभिमान से मुक्त है, पिछड़े हुए है, वही अवतार का सभव रहता है।

ईसा के पास कौन लोग थे ? मछुए! पॉल से पहले एक भी शिक्षित ईसाई नही था। ईसा ने उन्हे बताया—आओ, तुम्हे मैं आदमी पकड़नेवाले मछुए बनाता हू!

... ...

अप्पा और रत्नागिरी जिला

४. अपने जिले का अभिमान अनुभव करनेवाला अप्पासाहब जैसा और कौन है ? यदि रत्नागिरी जिले को ग्रामदान-कार्य के लिए आप चुनेंगे तो ग्रामराज्य के लिए एक अधिष्ठाता देवता आप मुफ्त मे पा जायगे।

और रत्नागिरी को आप जीत लें तो महाराष्ट्र के दिमाग को जीत लिया समझिये।

रावसाहब—रत्नागिरी जिले के लोकमत पर बम्बई मे रहनेवाले रत्नागिरीवालो का बडा प्रभाव है। चुनाव के वक्त उन्होने अपने-अपने घरों को बता रखा था कि अगर वे काग्रेस को मतदान करें तो पैसा नही जायगा।

इंग्लैंड में हिन्दी पढाइये

१. रूस में हिन्दी सेकंड लंग्वेज के तौर पर कई पाठशालाओं में लाजिमी कर दी गई है। इंग्लैंड में भी हफ्ते में दो घटे भी क्यों न हो, अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाय, स्नेह की निशानी के रूप में। फल यह होगा कि भारत में जो वामपक्षीय चिल्ला रहे हैं कि भारत कॉमनवेल्थ से सम्बन्ध-विच्छेद कर दे, उसमें रुकावट आ जायगी। भारत और इंग्लैंड के बीच स्नेह-सम्बन्ध की वृद्धि होगी।

हिन्दुस्तान और इंग्लैंड

२. हिन्दुस्तान और इंग्लैंड दो ऐसे देश हैं कि जो मेरी यूनिलैटरल निःशस्त्रीकरण की कल्पना को मूर्त रूप दे सकेंगे, हिन्दुस्तान अपनी आध्यात्मिकता के बल पर और इंग्लैंड अपने वैज्ञानिक प्रभाव के कारण।

विनोबा से रोष क्यों

३. कई गुजराती लोगों का कहना है कि विनोबा कम्युनिस्टों को बढ़ावा दे रहे हैं। गाधीजी अगर होते तो वे ऐसा कभी न करते। हम करते क्या है? जो अच्छा काम करते हैं, उन्हें आशीर्वाद देते हैं। वह आशीर्वाद न व्यक्ति के लिए है, न पक्ष के लिए, वह उस सत्कर्म के लिए होता है।

पर कम्युनिस्टों को चुनाव में खड़े रहने की इजाजत सरकार ने ही दी, उन्हें सरकार बनाने दी उनके हाथ बजट सुपुर्द किया और राजेन्द्रबाबू ने उन्हें अच्छे काम के लिए प्रशस्तिपत्र भी दिया है।

वे विनोबा पर गुस्सा इसलिए करते हैं कि विनोबा से उन्हें प्रेम है। उन्होंने उसकी एक मूर्ति बना ली है, जिसकी नाक उन्हें ठीक दिखाई नहीं देती। इस कारण वे चिढ़ जाते हैं। गुजरात में यह चिढ़ अधिक मात्रा में है। उन्होंने विनोबा को अपना मान लिया है न।

.. ..

गांधी-विचार कैसा !

४ गाधी-विचार क्या चीज है? मुझे दो ही प्रकार ज्ञात है—सत् और असत्। इन्हीं दो विशेषणों को मैं पर्याप्त मानता हूं।

चेरियन—बापू हमेशा कहा करते थे कि खुले मे रहो ।

अध्ययन की बात छिड जाने पर ग्रन्थालय का जिक्र किया जाता है। पर वह गलत है। हमे सृष्टि के साथ तन्मय होना चाहिए। पुस्तके उसमे रुकावट डालती है।

'पलालमिव धान्यार्थी'—मनुष्य मे वह शक्ति आनी चाहिए, जिससे वह ग्रन्थो मे से सार ग्रहण कर सके। जो उसमे थोथा है, फूस है, उसे उडा देने की क्षमता मनुष्य पा जाय।

भूदान-कार्यकर्ता के लिए यह नियम बनाया जाय कि वह हर रोज सवेरे इस प्रकार सूर्योदय के समय खुले आकाश के नीचे खेत मे बैठकर अध्ययन करे।

पाठशाला मे स्थिति भयानक रहती है। खिडकिया इतनी ऊचाई पर रहती है कि बाहर की चीजे न देखी जा सके। दीवार मे काला रग लगा रखते है, मानो वह जेलखाना हो। पाखाने मे इस प्रकार का काला रग रहता है।

रावसाहब—शान्तिनिकेतन मे रवीन्द्रनाथ ने खुले आकाश के नीचे वृक्षो की घनी छाया मे वर्ग रखने की प्रथा शुरू की थी सही, पर अब वहा उसका क्या बाकी रहा है ? अन्य विश्वविद्यालयो की अपेक्षा वहा का काम बिगड गया है। वह फैशन-यूनिवर्सिटी बन गई है और वहा पडितजी जाया करते है। वह वहा हरगिज न जाय।

विनोबा—शहरो मे ज्ञानवानो के जो कॉन्सेंट्रेशन कैम्प बन गये है, उनमे उन्हे खदेड बाहर कर देना चाहिए। वे देहातो मे फैल जाय। आज की शिक्षा-पद्धति की असफलता के कारण खोज लेने चाहिए। हमारी तरफ सस्थाए जल्द ही डूबने को होती है। पर उधर यूरोप मे तीनसौ बरस से यूनिवर्सिटिया चल रही है और आगे भी चलती रहेगी।

हमारी शिक्षा-प्रणाली भिन्न है। उसे आश्रमपद्धति कहते है। क्या है उसका रहस्य ? उसका रहस्य यही था कि लोगो के स्तर की अपेक्षा हमारा स्तर उच्च नही हुआ करता। आज क्या हालत है ? लोग घर-घर मे हर रोज मासाशन नही करते, पर अलीगढ विद्यापीठ मे हर रोज दस तोले मास हर विद्यार्थी को मिलना ही चाहिए, मानो वह रातिब ही ठहरा। मासा-

दान नही करना चाहिए, यह बात तो दूर रही, लेकिन वह हर रोज खाया जाय, यह दैनिक व्यवहार बन बैठा। इसके कारण सयम, भक्ति, ज्ञान की वृद्धि रुक जायगी।

एक तो यह बात है कि हमारा आदर्श कृत्रिम है, दूसरे अग्रेजी भाषा का बोझ ढोना पडता है। हमारे सारे विद्यार्थी उस बोझ के नीचे दब-से गये हैं। उनकी बुद्धि कुंठित हो गई है, पराक्रम मर चुका है। उधर पिट २१ साल की उम्र मे प्रधानमन्त्री बन गया। इधर क्या यह बात पहले नहीं थी? माधवराव पेशवा २१वें साल मे गद्दी पर बैठा, और बिखरा हुआ राज्य दस साल में सुधार दिया। दस साल में मराठा शक्ति तैयार कर दी। आज हम उसकी कल्पना तक नही कर सकते। आज तो २१वें साल में लडका सीखता ही रहता है। *'गुलीवर्स ट्रैवल्स' पढता है। उधर इग्लैड मे दस-बारह साल के* लड़के वह पुस्तक पढते हैं। 'विकार ऑव वेकफील्ड' और रोबिन्सन क्रूसो! उसमे क्या है? सोलहवें साल में ज्ञानेश्वर ने ज्ञानेश्वरी की रचना की। *भाऊसाहब पेशवा ने लडाइयां जीती।* अंग्रेजी के बोझ से हमारे बच्चे हतवीर्य हो गये हैं। अंग्रेजी के कारण कितना शक्तिक्षय होता है देखना हो तो इंग्लैंड मे सब विषय तमिल के माध्यम से पढाइये तो ध्यान मे आ जायगा। अग्रेजी की पढाई भी अंग्रेजी द्वारा हो! यह कैसी जबरदस्ती है! हमारे समय मे जब वर्ग में जाना होता था, तब हिम्मत न होती थी कि हमारी *जाति के हमारी ही भाषा बोलनेवाले अध्यापक से मराठी मे बोलें। 'May I come in, sir?'*[१] कहना पडता था। इसके बावजूद हिन्दुस्तान के लोगों ने काफी सत्त्व दिखा दिया, ऐसा कहना पड़ेगा।

एक दिन हमारे प्रिन्सिपलसाहब 'इनडिस्पोज्ड'[२] थे। वह कालेज नहीं आये। तब मेरे वर्ग के विद्यार्थियों ने मुझसे वर्ग पढाने को कहा। मैंने उन्हें बताया—देखो हमारा अश्व है न, वह अंग्रेजी मे Ass (गधा) बन जाता है, और हमारा 'कुत्ता' Cat (बिल्ली) बन जाता है। सब हँस पड़े। मैंने उन्हें बताया कि आज बारहसौ की तनख्वाह का मैंने काम किया! साहब क्या पढ़ाता है? 'Light Foot, White Foot!' क्या यह कविता है?

[१] क्या मैं अंदर आ सकता हूं? [२] अस्वस्थ

उसकी वह मातृभाषा है और वह कविता छोटे बच्चों के लिए लिखी हुई है। उसके दिमाग को जरा भी तकलीफ सहनी पडती है ? अंग्रेजी के इस बोझ की बदौलत तत्त्वज्ञान हासिल नही होता, तत्त्वज्ञानात्मक भूमिका नही बन पाती।

चेरियन—केरल का एक व्यक्ति इंग्लैंड से पढकर आया। वह कहता था—"क्या कहूं, इंग्लैंड मे सब सुशिक्षित है, सब अंग्रेजी बोलते है। मै एम. ए. उत्तीर्ण होकर भी उनके नाई के माफिक भी अंग्रेजी नही बोल सकता।"

सकामता का खतरा

विनोबा—धर्म को अधर्म से उतना खतरा नही, जितना सकामता से। इसलिए हमे चाहिए कि हम सद्भावनावान् लोगो को ही इकट्ठा कर लें। सज्जनो का संग्रह कर ले। वही सच्ची बुनियाद होगी। वही पक्की नीव है हमारे कार्य की। वजनदार प्रभाववाले लोगो की खोज मे न रहे, उनके पीछे न पडे। वे मतलब लेकर आया करते है। सकाम आदमी भेडिया बन जाता है। सज्जन आदमी ढूंढने मे समय लगेगा, पर वे ही पक्की बुनियाद है। चालीस साल पहले हम मिले थे। उन दिनो इस्लामपुर मे श्री गोडबोले रहते थे। उनके साथ मैने तुकाराम के अभगो के विषय मे कुछ चर्चा की थी। चालीस साल बाद अब उन्होने पत्र भेजा है और अपने सुधारमण्डल के लिए शुभ कामनाओ की माग की है।

कोड के मार्ग पर,
२४-१२-५७

करता है। हम तो ज्ञानी नहीं हैं। अभिनय से थोड़े ही काम बनेगा? अज्ञान के होते हुए भी ज्ञानी का स्वांग थोड़े ही रचा जाय?

हेतुरहित पर निष्प्रयोजन नहीं

कन्याकुमारी में संकल्प किया गया है, उसके मुताबिक काम तो जारी रहेगा ही। गीता में लिखा है—जो कर्म का फल न देखते हुए काम करता है वह सामस कर्ता कहलाता है, अथवा इसका यह न्याय भी मशहूर है—प्रयोजनं अनादृत्य न मंदोऽपि न प्रवर्तते। सो ज्ञानी की क्रिया में प्रयोजन रहेगा, हेतु नहीं। ग्रामदान का प्रयोजन रहेगा, पर वह हेतु नहीं रहेगा। ग्रामदान मिल जाय तो ठीक ही है, न भी मिलें तो दूसरे काम होंगे।

ज्ञान-गंगा बहती ही रहेगी

भूदान गंगा के छः भाग प्रकाशित हुए हैं। उन्हें तो खरीदना ही पड़ेगा। नौ रुपये उनके लिए खर्च करने पड़ेंगे। हमारी वाणी तो बहती ही रहेगी और ग्रंथ बनेंगे। ग्रामदान पर बोलना छोड़ देने पर भी अधिक ग्रंथ होने की सम्भावना है। फिर भी चाहता हूं कि सन् ५८ से और महाराष्ट्र में निरुपाधि बनकर विहार करूं। गुरुबोध में कहा ही है—'स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णु।' उसके अनुसार चलना है।

सर्वभूतहृदय होना नहीं

साने गुरुजी का शिष्य मोटाडीकर आया था न बुलाने? 'अहेतुक बनकर आऊं तो तुम्हारा काम बन जायगा,' मैंने कहा। पानी समुद्र से मिलने जाता है। लोग अपनी-अपनी इच्छा के मुताबिक उसमें काम लेते हैं। इसके अनुसार जिसने हेतुत्याग किया, उससे लोगों के अनेक हेतु सिद्ध होंगे। आज क्या होता है? बड़े-बड़े जमीदार हमसे दूर रहते हैं। कई एक तो गांव छोड़कर भाग जाते हैं। तो हम कहते हैं कि वे हमारे ही लिए सब छोड़कर चले गये हैं। यह तो मजाक में कहता हूं। पर यह सर्वभूतहृदय बनना नहीं। उन्हें डर लगता है और इसका अर्थ यह है कि हम पूर्णरूपेण निर्भय नहीं हुए।

गोविन्दराव कहते हैं, इसमें लोग अपना-अपना उल्लू सीधा कर लेंगे। क्यों न कर लें? एक बार आर. एस. एस. वालों ने मुझे हनुमान-जयन्ती के

अवसर पर बुलाया। मैंने स्वीकृति दी तो कांग्रेसवाले मित्र बोले—"यह ठीक नहीं हुआ।" मैंने कहा—"क्या रावण-जयंती का निमंत्रण मैंने स्वीकार किया? मैंने तो हनुमान-जयंती के लिए जाना कबूल किया है।" वे बोले—"पर उनका मतलब तो पूर्ण हो जाता है।" मैं बोला—"मेरा भी मतलब सिद्ध हो जाता है न!" "आपका क्या मतलब?" "उनसे मिलना। यही मेरा मतलब है।"

दो बल : हनुमान और रावण

ये कांग्रेसवाले इतना सेक्युलर बन गये हैं कि हनुमान-जयंती जैसे धार्मिक सामाजिक अवसर पर भी कहीं नहीं जायंगे। मैं वहां गया और उनसे क्या कहा? मैंने कहा—"रावण भी एक प्रकार के बल का प्रतिनिधि है और हनुमान भी एक प्रकार के बल का। पर हम रावण-जयंती नहीं मनाते। हनुमान-जयंती मनाया करते हैं। क्यों? क्योंकि वह "बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम्", कामराग-रहित बल का प्रतिनिधि है।"

दूसरी बात मैंने उनसे कही—"आप यहां अखाड़े में आते हैं तो क्या कुछ फीस भी लेते हैं?" वे बोले—"जी हां, चार आने लेते हैं।" मैं बोला—"यह तो उल्टी बात करते हैं। वे यहां आकर कुछ काम करते हैं तो आपको चाहिए कि आप ही उन्हें कुछ मेहनताना दे दें। पर यहां मेहनत कैसी? बेकार उठने-बैठने की। आपको उत्पादक परिश्रम करना चाहिए। आप अगर अनाज पैदा नहीं करेंगे तो आपके शरीर में बल का सचार कैसे होगा? अन्न ही बल है।"

मेरे साथ मेरे मित्र भी आये थे। वह बोले—आपने बहुत अच्छी बातें कहीं। मैं बोला—हम खराब कब बोलते हैं?

संगठन करेगा सो मार खायेगा

महाराष्ट्र में मैं सबसे मिलूंगा। जो हेतु को लेकर जायगा वह महाराष्ट्र के दो टुकड़े कर देगा। उससे एकता के बजाय झगड़े बढ़ेंगे। महाराष्ट्र में जो ऑर्गनाइजेशन करेगा, वह मार खायेगा, क्योंकि उसकी प्रतिक्रिया अवश्य ही होगी। वहां एक से बढ़कर एक संगठन है। महाराष्ट्र को ज्ञानदेव ने वश में किया। वह निर्हेतुक, निरुपाधि रहे।

रावसाहब—फिर तो स्वागत समिति की गुंजाइश ही नहीं रही।
विनोबा—वह तो आप देख लें।

हिरेकेरूर के मार्ग पर,
२५-१२-५७

: ४८ :

विश्वलिपि : नागरी व रोमन

नागरी, लोकनागरी और रोमन लिपियों के बारे में आज काफी चर्चा हुई। विनोबा ने बताया—रोमन लिपि के गुण नागरी में लाने हों तो आज के सब व्यंजनाक्षर हलन्त चिह्न के बिना ही हलन्त मान लिये जायं और उनके बाद स्वराक्षर लिखे जायं। यह लिपि विश्वनागरी कहलायेगी। यह विश्वनागरी छपाई तथा टंक-लेखन में इस्तेमाल की जाय। लिखने के लिए दूसरी है ही। हाल में व्याकरण तथा कोश में उसका प्रयोग हो।

दुनिया में अबतक यूरोप का दाव (इनिंग्ज) रहा। अब वह खत्म होने को है। इसके आगे एशिया का दाव चलेगा। हिन्दुस्तान अगर पराक्रम करेगा, याने दुनिया के सवाल हल करेगा तो उसकी नागरी लिपि विश्व-लिपि बनेगी। जापान पराक्रमी ठहर जाय तो जापानी को वह भाग्य मिलेगा। कौन-सी लिपि चलेगी यह उसके गुणों पर निर्भर न रहकर पराक्रम पर अवलम्बित है। पहले एशिया की मात रही, उसके बाद यूरोप की बारी आई। अब यूरोप के खेल खत्म होने पर हैं। दुनिया के सवाल हल करने में उसके सफल होने की सम्भावना नहीं। उसके लिए नवदर्शन की जरूरत है। वह भारत के पास है। दक्षिण भारत और उत्तर भारत के बीच भी इस प्रकार की हार-जीत बारी-बारी से होती आई है।

तदेतत् (सत्यम्) त्र्यक्षर उपासीत (बृ० ५-५-१)। यह उपनिषद्-वचन है। अर्थात् स-ति-यम् ये तीन अक्षर उनके कल्पित थे।

मैं—हमारी वर्णमाला मूलाक्षर कहलाती है। मतलब कि वे मूलन.

ही क ख ग जैसे स्वरान्त हैं। इसलिए उन्हें अक्षर कहते हैं। हलन्त चिह्न बाद में जोड़कर उन्हें हल बनाया जाता है। तो भी विश्वनागरी बनाने में कोई बाधा नहीं। पर उसका चलन दुस्साध्य है। यह एक भयानक क्रांति होगी। दो या अधिक वर्ण ध्यान में देखकर उनका एक उच्चारण करना ऐसी प्रक्रिया है, जो नागरी की एक अक्षर के लिए एक उच्चारवाली प्रक्रिया के बिल्कुल विपरीत है। उदाहरण लीजिये—कार्त्स्न्य दो अक्षर-वाला शब्द है, अष्टवर्णी शब्द है। यह क आ र त स न य अ इस प्रकार अष्टाक्षरी गिनना पड़ेगा और उच्चारण में सिर्फ दो अक्षर रहेंगे। यह बात भयानक है। अब रोमन लिपि में यह बात है ही। पर शुरू से उसकी रचना वैसी रही है, इस कारण यह खटकती नहीं। Kartsnya पढ़ने में दिक्कत नहीं होती। पर क आ र त स न य अ को कार्त्स्न्य पढ़ने में पहले अक्षरों का अक्षरत्व भूलना, बाद में उन्हें व्यंजन के रूप में स्मरण करना, फिर उनका संयोग करना और अन्त में उच्चारण करना आदि क्रियाएं करनी पड़ेंगी। पूर्वाभ्यस्त मन इतना परिश्रम करने को तैयार नहीं होता। रोमन लिपि के बारे में इतना खटाटोप नहीं करना पड़ता। इसलिए वही लिपि स्वीकृत हो, यह है मेरी राय। पूर्व प्रकाशित ग्रंथ उस लिपि में फिर से छपवाने पड़ेंगे, पर यह आपत्ति विश्वनागरी के बारे में भी होगी। इसके अलावा रोमन लिपि के स्वीकार से आज ही लिपि की दृष्टि से समूचे संसार का एकीकरण हो जाता है, नवनवीन भाषाएं सीखने में एक लिपि कहांतक सहायक होती है, आपको तो बताने की जरूरत नहीं। मैं तो कहना चाहूंगा कि इसके प्रारम्भ के रूप में 'गीता-प्रवचन' हिन्दी रोमन लिपि में छपवाकर प्रसारित किया जाय।

हिरेकेरूर की राह पर,
२५-१२-५७

ा म ह श जैसे स्वरान्त हैं। इसलिए उन्हें अक्षर कहते हैं। हलन्त चिह्न बाद में जोड़कर उन्हें हल बनाया जाता है। तो भी विश्वनागरी बनाने में कोई बाधा नहीं। पर उसका चलन दूरापास्त है। वह एक भयानक क्रांति होगी। दो या अधिक वर्ण आगो से देखकर उनका एक उच्चारण करना ऐसी प्रक्रिया है, जो नागरी की एक अक्षर के लिए एक उच्चारवाली प्रक्रिया के बिल्कुल विपरीत है। उदाहरण लीजिये—कात्स्न्यं दो अक्षर-वाला शब्द है, द्वावयवी शब्द है। वह क आ र त स न य अ इस प्रकार अष्टावयवी लिखना पड़ेगा और उच्चारण में सिर्फ दो अक्षर रहेंगे। यह बात भयानक है। अब रोमन लिपि में यह बात है ही। पर शुरू से उसकी रचना वैसी रही है, इस कारण वह खटकती नहीं। Kartsnya पढ़ने में दिक्कत नहीं होती। पर क आ र त स न य अ को कात्स्न्यं पढ़ने में पहले अक्षरों का अक्षरत्व भूलना, बाद में उन्हें व्यंजन के रूप में स्मरण करना, फिर उनका संयोग करना और अन्त में उच्चारण करना आदि क्रियाएं करनी पड़ेंगी। पूर्वाभ्यस्त मन इतना परिश्रम करने को तैयार नहीं होता। रोमन लिपि के बारे में इतना घटाटोप नहीं करना पड़ता। इसलिए वही लिपि स्वीकृत हो, यह है मेरी राय। पूर्व प्रकाशित ग्रंथ उस लिपि में फिर से छपवाने पड़ेंगे, पर यह आपत्ति विश्वनागरी के बारे में भी होगी। इसके अलावा रोमन लिपि के स्वीकार से आज ही लिपि की दृष्टि से समूचे संसार का एकीकरण हो जाता है, नवनवीन भाषाएं सीखने में एक लिपि कहांतक सहायक होती है, आपको तो बताने की जरूरत नहीं। मैं तो कहना चाहूंगा कि इसके प्रारम्भ के रूप में 'गीता-प्रवचन' हिन्दी रोमन लिपि में छपवाकर प्रसारित किया जाय।

हिरेकेरूर की राह पर,
२५-१२-५७

: ४६ :

भयानक प्रजावृद्धि और ब्रह्मचर्य

विनोबा—प्रजावृद्धि बेहद हो रही है। यह एक बुनियादी समस्या उठ खड़ी होनी है। इस प्रजा के पोषण के लिए हर चूहा और हर हड्डी तक काम में लानी पड़ेगी। यह सब मुझे तो नीरस लगता है। प्रजोत्पादन में कुछ मर्यादा रहे, नहीं तो समूचे प्राणिजगत् का खात्मा हो जायगा। काठियावाड के सिंह नष्ट होने लगे ही थे। कल गाय भी गायब हो जाने की नौबत आयेगी। उसके बिना हमारा काम नहीं चलता, इसीलिए वह आजतक बची है। पर कल प्रजा-वृद्धि के साथ बिना बैलों की खेती अधिक फायदेमन्द होगी। तब बाघ से जो दुश्मनी है वही गाय से भी शुरू होगी। ईश्वर ही संहार-कर्ता है, सो बात नहीं, मानव भी संहार कर सकता है। कल आप तय करेंगे तो गिन-गिनकर एक-एक कुत्ते का और मवेशी का संहार आप कर डालेंगे। मानव मानव का दुश्मन बनेगा। एक समाज दूसरे समाज का खात्मा कर डालने पर तुल जायगा। नीग्रो, रेड इंडियनों का संहार हो ही चुका है। बिहार साफ कर लेने से बस्ती के लिए बढ़िया प्रदेश मिल जायगा, इस विचार से वह बेचिराग किया जा सकता है।

साइंस के बल पर, विज्ञान के बूते पर, उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। पर उसमें क्या होगा ? वासना पर अंकुश न हो तो उससे काम नहीं बनेगा। इन्सान सर्व-भक्षक बन जायगा। एक तरफ कोढ़ियों की तादाद बढ़ती जायगी तो दूसरी तरफ उनकी सेवा के प्रबन्ध से क्या होगा ? कितनों की सेवा आप कर सकेंगे ? जो काम अपने से पूरा होने की संभावना नहीं, उसे करते रहने से क्या लाभ ? Getting and spending is sheer waste of Power अर्थात्—"लेकर खर्च कर डालना सत्ता का महज अपव्यय है।" जिसे हम पूरा कर सकते हैं, उसे ही हाथ में ले लें।

कल अगर सौ में से पचास लोग ब्रह्मचर्य का पालन करना तय कर लें तो क्या नहीं होगा। ब्रह्मचर्य की आवश्यकता सिर्फ आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं, सामाजिक दृष्टि से भी महसूस हो रही है। केवल फॅमिली प्लॅनिंग

(परिवार-नियोजन) से काम नहीं चलेगा, सामाजिक नियोजन करना पड़ेगा। आश्रम-विचार और क्या है? यह पुराना समाज-नियोजन ही है। जगत् के दुःख की जड़ तृष्णा में है। बुद्ध ने इसे पहचाना और तृष्णा-निरोध का मार्ग दिखाया। बिना वासना-नियमन किये सुख नहीं मिलेगा। पर ब्रह्मचर्य के बारे में बोलने की किसीमें हिम्मत ही नहीं। विज्ञान संयम को, ब्रह्मचर्य को क्यों न बढ़ावा दे दे?

: ५० :

फाणिका—८

सूर्योपासना नहीं, सत्योपासना

१. सूर्योदय के वक्त खड़े या बैठे 'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा' आदि उपनिषद्-वचन विनोबा कहते हैं, वह ईश्वरोपासना है, सूर्योपासना नहीं।

जयदेव बोला, "सूर्योदय नहीं हुआ।"

विनोबा ने कहा, "सूर्योदय से हमें क्या वास्ता? हम सूर्योपासना नहीं करते, सत्योपासना, ईश्वरोपासना करते हैं।

... .

मां का अंतिम संस्कार और मेरा आग्रह

२. मां की मृत्यु के वक्त में अतीव कठोर बना। मेरा मन्तव्य था कि ब्राह्मणों के हाथों विधि को नहीं करना है। पिताजी बोले—मां की श्रद्धा के अनुसार चलना हमारा कर्त्तव्य है। मैं बोला—मेरा विश्वास है कि मां मेरे ही हाथ का अंत्य संस्कार पसंद करेगी। लोगों ने कहा—अपना आग्रह आगे कभी चलाना। अब ब्राह्मणों द्वारा संस्कार हो जाय। मैं बोला—जी नहीं, अपने तत्त्व पर अडिग रहने की यही बेला है। मां दुबारा नहीं मरती। यही है कसौटी का क्षण। मैं अडिग रहा। गोपालराव ने ऐसे हर अवसर पर तत्त्व के खिलाफ बर्ताव किया। मैंने अगर पाप किया हो तो

वह प्रचुर मात्रा में किया, पुण्य किया हो तो प्रचुर मात्रा में, इसमें कोई शक नहीं।

पिताजी योगी थे

३ पिताजी बड़े नियमबद्ध थे। वह शारंगपाणीजी के यहां हर वार को जाया करते। एक निश्चित कुर्सी पर बैठकर उनके साथ एक घंटा सत्संग में बिताते और लौट आते। यह उनका सिलसिला बरसों तक जारी रहा। उसमें कभी विच्छेद नहीं आया। कभी समयाभाव के कारण शारंगपाणीजी घर पर न रहे तो भी हमेशा की भांति वह उतना समय बिताकर ही लौटते। बड़ौदा में शारंगपाणीजी के यहां मैं गया था, तब उन्होंने मुझे यह बात बताई और उनकी कुर्सी भी दिखाई। पिताजी की यादगार में उन्होंने वह कुर्सी वैसी ही रखी है। वह बोले—तुम्हारे पिताजी योगी थे।

..

पिताजी से शास्त्रीय वृत्ति सीखी

४ पिताजी ने अपनी मधुमेह की बीमारी पर अपने नियमित और वैज्ञानिक आहार-प्रयोगों से काबू प्राप्त किया था। पेट की बीमारी भी उन्हें आखिर तक सताती रही। जलोदर से उनका अन्त हुआ। उनसे मैंने शास्त्रीय प्रवृत्ति सीख ली है। कुछ ने मुझपर आलोचना की कि मैंने उनकी लाश को यथाविधि नहलाया नहीं। पर जल्द-से-जल्द मैंने उसे अग्नि-सात् किया।

..

गुरु-बोध

५ श्री शंकराचार्य ने 'वाक्य-विचार' को मुख्य उपासना के रूप में माना है। गीति, भक्ति, वेदान्त-पाठ, उपनिषद्-पद्धति, वाक्य-विचार यह अनुक्रम रखकर मन में अपरोक्षानुभूति तथा विवेक चूडामणि, जो कि पूर्ण विचारवाले ग्रंथ हैं, संक्षेप में रखे गये हैं।

ततः किम् से अनात्मश्रीविगर्हण से लेकर ही साधना का प्रारंभ होता है।

भूयो मित्रैः पूरितो वा ततः किम्—मित्र शब्द पुल्लिंग में प्रयुक्त हुआ

है, सो क्यों ? यह प्रश्न श्री पडित द्वारा पूछा गया था। मैंने लिख दिया—मैं अपने सारे मित्र पुरुष ही देख रहा हूं।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति—यह स्तोत्र आद्य श्री शंकराचार्य-रचित नही माना जाता है। पर मेरी राय में वह निश्चित रूप से उन्हीका है। लौकिक भावो से समरस होकर उन्होंने वह लिखा है। कवि ऐसा तो किया करते हैं। उसमे जो उम्र का निर्देश है वह श्लोक बाद में प्रक्षिप्त होगा।

डा० वेलवलकरजी की सम्मति में 'वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयताम्' आदि श्लोक-पचक शंकराचार्य रचित नही है। पर मैं उसे उन्हीका रचा हुआ मानता हूं। 'निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम्' कहते ही मैं जोश मे आ जाता हू।

... ...

वेद और वेदार्थ

६. वेद मे मित्र शब्द पुल्लिग मे प्रयुक्त है, वह सिर्फ सूर्य का ही वाचक नही। 'मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः' वह मित्र भी हो सकता है। वेद का 'अश्व' और लौकिक सस्कृत का 'अश्व' एक नही। सस्कृत का अश्व याने घोड़ा, पर वेद का अश्व केवल घोडा नही है।

वेदो का चुनाव मैं दो प्रकार से करना चाहता हू। एक आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वजनोपयुक्त भिन्न-भिन्न मत्रो का चुनाव, और दूसरा एक सपूर्ण मडल का अर्थ-निर्धारण। यह दूसरा प्रकार वेदों का समग्र अर्थ-निर्धारण किस प्रकार किया जाय दिखाने के लिए। वह विद्वानो के लिए मार्गदर्शक रहेगा।

... ...

वैदिक ध्यानयोग के ध्यान में ठीक पैठे बिना, वेदो का स्वच्छ दर्शन हुए विना वेद के विषय में लिखने का मेरा विचार नही। जो लोग इनके बिना वेद पर लिखते हैं, वे वेदो का अपकार करते हैं। बिभेति अल्पश्रुतात् वेदः मां अयं प्रहरिष्यति इति।

... ...

उपनिषद् और विचारपोथी

७ उपनिषद् भिन्न-भिन्न नोट्स के संग्रह हैं। बहुत-सी पुनरावृत्ति है, '[illegible] वायु, तेज आदि शब्दों से वाक्य बनाओ' कहने जैसी बात है। उपनिषदों के बारे में मुझे कुछ खास बात नहीं कहनी है। उपनिषदों का अध्ययन, ईशावास्यवृत्ति तथा विचार-पोथी मिलाकर एक पुस्तक बनाई जाय। विचार-पोथी उसी किस्म की पुस्तक है। यों तो सब उपनिषद्-साहित्य [illegible] में आ गया है।

... ...

मेरा 'पद्यामृत'

८ जेल में मुझसे पूछा गया कि हिन्दुधर्म का प्रमाण-ग्रंथ कौन-सा है। मैंने बताया —हमारा पद्यामृत। यह अबतक बना नहीं। ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और रामदास के सारग्रहों का सार।

... ...

धार्मिक मनुष्य का विचार

९ मुझे १४ रुपये पारितोषिक के रूप में मिले थे। उन रुपयों से पुस्तक खरीदनी थी। मैंने एकनाथी भागवत की प्रति खरीदी। [illegible] के लिए [illegible]। उनके पिताजी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। पर उन्होंने देखा, यह एकनाथी भागवत पढ़ रहा है। उन्होंने मना किया। बोले—"यह [illegible] पढ़ने के लिए योग्य नहीं। अपना स्वाध्याय छोड़कर यह क्या पढ़ रहा है?" तब उसने पिताजी से छिपकर वह पुस्तक पढ़ी। उन्होंने यह नहीं कहा कि यह किताब बिलकुल पढ़ी ही न जाय। यही विशेष बात है। पर एक धार्मिक मनुष्य का यह विचार है जो धार्मिक मनुष्य का क्या [illegible]। [illegible] का उदाहरण है।

... ...

कुरान व मेरी दृष्टि

१० कुरान, बाइबिल आदि से [illegible] मैंने जो [illegible] किया है [illegible] उदाहरण की नहीं। [illegible]

है, सो क्यो ? यह प्रश्न श्री पडित द्वारा पूछा गया था। मैंने लिख दिया—मैं अपने सारे मित्र पुरुष ही देख रहा हू।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति—यह स्तोत्र आद्य श्री शंकराचार्य-रचित नही माना जाता है। पर मेरी राय मे वह निश्चित रूप से उन्हीका है। लौकिक भावो से समरस होकर उन्होने वह लिखा है। कवि ऐसा तो किया करते हैं। उसमे जो उम्र का निर्देश है वह श्लोक बाद में प्रक्षित होगा।

डा० बेलवलकरजी की सम्मति मे *'वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयताम्'* आदि श्लोक-पचक शंकराचार्य रचित नहीं है। पर मैं उसे उन्हीका रचा हुआ मानता हू। *'निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम्'* कहते ही मैं जोश में आ जाता हू।

... ...

वेद और वेदार्थ

६ वेद मे मित्र शब्द पुल्लिग मे प्रयुक्त है, वह सिर्फ सूर्य का ही वाचक नही। *'मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः'* वह मित्र भी हो सकता है। वेद का 'अश्व' और लौकिक सस्कृत का 'अश्व' एक नही। सस्कृत का अश्व याने घोड़ा, पर वेद का अश्व केवल घोडा नही है।

वेदो का चुनाव मैं दो प्रकार से करना चाहता हू। एक आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वजनोपयुक्त भिन्न-भिन्न मंत्रों का चुनाव, और दूसरा एक संपूर्ण मंडल का अर्थ-निर्धारण। यह दूसरा प्रकार वेदों का समग्र अर्थ-[illegible] किस प्रकार किया जाय दिखाने के लिए। वह विद्वानों के [illegible] रहेगा।

... ...

वैदिक ध्यानयोग के ध्यान में ठीक पैठे [illegible] बिना वेद के विषय मे लिखने का मेरा [illegible] वेद पर लिखते हैं, वे वेदो का अयं प्रहरिष्यति इति।

...

: ५१ :

जय शम्भो ! जय महावीर !

रतलाम का मंदिर : जैन और सनातनी

आज सबेरे टहलते वक्त रतलाम के देवकृष्ण व्यास और प्रेमालाल जोशी को समय दिया था। डा० रामगोपाल जोशी, जो रतलाम के लोक-सेवक तथा शांति सैनिक हैं, उन्हें ले आये थे। वहां की परिस्थिति उन्होंने समझाई। रतलाम में एक प्रसिद्ध मंदिर है, जिसमें जिनमूर्ति तथा शिव-लिंग दोनों हैं। सो जैन और सनातनी दोनों ही वहां जाते हैं। अब कानून से हरिजनों को मंदिर-प्रवेश की इजाजत मिल गई है। मंदिर में हरिजन न आने पायें, इसलिए जैनों ने शिवलिंग मंदिर से निकालकर फेंक दिया। सरकार ने उसकी पुनः स्थापना की। उसके बाद जैनों ने हाईकोर्ट की शरण ली और वहां निर्णय करा लिया कि वह मंदिर तथा उसकी भूमि जैनों की व्यक्तिगत जायदाद है, इसलिए मंदिर जैनों के हवाले कर दिया जाय और मूर्ति वहां से हटाई जाय। उसके अनुसार सरकार ने पुलिस की मदद से मध्यरात्रि के समय मूर्ति वहां से हटा दी। इस कारण बहुसंख्य सनातनधर्मी समाज क्षुब्ध हो गया है और मारकाट की संभावना हर क्षण बनी है। सरकार ने १४४ धारा लागू की है।

विनोबा डा० रामगोपाल जोशी से बोले—

मेरे पास एक ही पक्ष आया है सो निर्णय देना असम्भव है। निर्णय देना ही हो तो यह दिया जा सकता है कि वह पक्ष शरणागति स्वीकार करे। पर इस प्रकार एकतरफा निर्णय देने की मेरी इच्छा नहीं। शांतिरक्षा का तो सवाल नहीं, क्योंकि उस काम के लिए पुलिस है ही। फिर मुसीबत की सोचना न आ जाय, बस। अब तो कोर्ट की ही शरण ली जाय, क्योंकि हम संविधान को माननेवाले हैं।

रामगोपाल बोले, "शांतिसैनिक के नाते मुझे अपनी हानि सहनी होगी।"

कर मूल ग्रंथ को देखने की आवश्यकता महसूस न हो। उस ग्रंथ का सार-भूत अंश संकलन में संगृहीत हो। उसे पढ़कर कोई मूल ग्रंथ पढ़ने लगे तो मूल ग्रंथ के बारे में उसका आदर-भाव कम हो जायगा, बढ़ेगा नहीं, क्योंकि उसमें सिर्फ छाछ ही मिलेगा।

... ...

पष्ट और स्पष्ट

११. 'येथ बोलिलें पष्ट हरिभजन' रामदास की इस उक्ति में 'स्पष्ट' के बदले 'पष्ट' शब्द आया है। वह 'स्पष्ट' की अपेक्षा स्पष्ट और जोरदार मालूम देता है।

हिन्दी में 'स्पष्ट' का 'अस्पष्ट' हो जाता है। कौन कहेगा कि उसकी तुलना में 'पष्ट' अधिक स्पष्ट नहीं है? 'अस्तुति निंदा दोऊ त्यागे' इसमें अस्तुति याने स्तुति। स्तुति का ही अस्तुति बना है।

... ...

डिक्टेफोन नहीं चाहिए

१२. डिक्टेफोन की आवश्यकता नहीं। वह हमारा साधन नहीं। उस पर मेरा भरोसा भी नहीं। उससे प्रचार नहीं होता।

... ...

सुवर्ण-कंकणवत् विवर्त

१३. ज्ञानेश्वरी में रज्जुसर्पवाला दृष्टान्त है। अमृतानुभव में सुवर्णकंकण का है। पहला है अपरिपक्व मानसवालों के लिए, दूसरा है परिपक्व मानस-वालों के लिए। पहला विवर्तवाद है, दूसरा परिणामवाद माना जायगा। पर वह भी विवर्त ही है। विचार-पोथी में यह विचार आया है—'मैं सुवर्ण-कंकण विवर्त मानता हूं।'

हिरेकेरूर: प्रातः घूमने के समय,
२६-१२-५७

: ५१ :

जय शम्भो ! जय महावीर !

रतलाम का मंदिर : जैन और सनातनी

आज सवेरे टहलते वक्त रतलाम के देवकृष्ण व्यास और मदनलाल जोशी को समय दिया था। डा० रामगोपाल जोशी, जो रतलाम के लोक-सेवक तथा शांति सैनिक हैं, उन्हें ले आये थे। वहां की परिस्थिति उन्होंने समझाई। रतलाम में एक प्रसिद्ध मंदिर है, जिसमें जिनमूर्ति तथा शिव-लिंग दोनों हैं। सो जैन और सनातनी दोनों ही वहां जाते हैं। अब कानून से हरिजनों को मंदिर-प्रवेश की इजाजत मिल गई है। मंदिर में हरि-जन न आने पायें, इसलिए जैनों ने शिवलिंग मंदिर से निकालकर फेंक दिया। सरकार ने उसकी पुन स्थापना की। उसके बाद जैनों ने हाइकोर्ट की शरण ली और वहां निर्णय करा लिया कि वह मंदिर तथा उसकी भूमि जैनों की व्यक्तिगत जायदाद है, इसलिए मंदिर जैनों के हवाले कर दिया जाय और मूर्ति वहां से हटाई जाय। उसके अनुसार सरकार ने पुलिस की मदद से मध्यरात्रि के समय मूर्ति वहां से हटा दी। इस कारण बहुसंख्य सनातनधर्मी समाज क्रुद्ध हो गया है और मारकाट की संभावना हर क्षण बनी है। सरकार ने १४४ धारा लागू की है।

विनोबा डा० रामगोपाल जोशी से बोले—

मेरे पास एक ही पक्ष आया है तो निर्णय देना असंभव है। निर्णय देना ही हो तो यह दिया जा सकता है कि वह पक्ष शरणागति स्वीकार करे। पर इस प्रकार एकतरफा निर्णय देने की मेरी इच्छा नहीं। शांतिरक्षा का भी सवाल नहीं, क्योंकि उस काम के लिए पुलिस है ही। सिर फुटौवल की नौबत न [illegible]। मन में कोर्ट की ही शरण ली जाय, क्योंकि हम संविधान

[illegible]

[illegible]निक के नाते मुझे अपनी बलि चढ़ानी

विनोबा बोले—जय शंभो ! जय महावीर !

हिरेकेरूर : प्रातः घूमने के समय,
२७-१२-५७

: ५२ :

गीतार्थ

धर्म का अविरोधी काम : श्रीशंकराचार्य का अर्थ

१.'**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ् ।**' गीता का यह वचन मशहूर है। इसका अर्थ यह किया जाता है कि वैवाहिक स्त्री-पुरुष-विलास धर्म को मान्य है। पर वह ठीक नही। किशोरलालभाई केवल प्रजोत्पादनार्थ स्त्रीपुरुष-संबध धर्म्य मानते हैं। ज्ञानदेव का अर्थ गोलमोल है।

पर शकराचार्य काम से अशनपानादि का अर्थ लेते है और उसे ही धर्म्य मानते हैं। मुझे उनका अर्थ ठीक जचता है। प्रजोत्पादन-हेतु काम के बारे मे गीता का दूसरा वचन है : '**प्रजनश्चास्मि कंदर्पः**' 'उत्पत्ति-हेतु मैं काम। इसलिए वह अर्थ '**धर्माविरुद्धो...**' से खीचातानी से निकालने की जरूरत नही।

गीता के दो विभूति-योग

सातवें और दसवें अध्याय मे विभूतियां दी गई है। सातवें मे '**बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्**' आदि सूक्ष्म विभूतिया है, दसवें में '**स्थिराणां च हिमालयः**' आदि स्थूल हैं।

: ५३ :

मालथस का सिद्धान्त

मै—क्या मालथस का सिद्धान्त आपको मान्य है? सिद्धान्त यह है कि संसार में हर साल प्रजावृद्धि होगी और उस अनुपात में अन्नोत्पत्ति में वृद्धि नहीं होगी। इसलिए अगर लोग सुख से रहना चाहते हैं तो संतति-निरोध करना चाहिए। जनसंख्या को सीमित रखना चाहिए।

विनोबा—लोगों के लिए खाद्यान्न की कमी महसूस नहीं होगी। मनुष्य से बढ़कर समर्थ प्राणी दूसरा नहीं। अगर वह अन्य प्राणियों को मारकर खाने लगा और बाघ, सिंह, कीमकीटक भी नहीं छोड़े गये तो अन्न की कमी क्यों रहेगी? इससे मनुष्यों को भी बुढ़ापे या अन्य कारण से निरुपयोगी बन जाने पर मारकर, और उनके मरणोपरान्त उनका मांस क्यों न खाया जाय, यह भी विचार संभव है। पर इससे मनुष्य जी जायगा, तो भी मानवता मर मिटेगी। मानवता की रक्षा के लिए उसे संयम सीखना है। अगर वह संयम नहीं सीखेगा तो वह महाराक्षस बन जायगा।

> I am monarch of all I survey
> My right there is none to dispute,
> From the centre all round to the sea
> I am lord of the fowl and the brute.

यह तो वह कहता ही है। वह पशु-पक्षियों का प्रभु बन चुका है।

आपके गुरुजी ने अपना मृत शरीर शिक्षा के लिए चीरफाड़ करने के हेतु दे दिया। अपनी संतति के पोषण के लिए वैसे ही वह क्यों न दिया जाय? युद्ध में जब खाने की चीजें नहीं दी जा सकीं तब सैनिकों ने मृत मनुष्य-शरीरों को फाड़कर खा डाला और कभी-कभी तो जिन्दा आदमी भी खाने के हेतु मारे गये और भूख मिटाई गई। अगर आदमी केवल वासना-तृप्ति के लिए ही जीने लगे तो यह असंभव नहीं कि वह यहां तक नीचे गिर जाय। बिलाव अपनी विषय-वासना की तृप्ति के लिए नर-बच्चों को मार डालता है। पशुओं में यह बात चलती है। पर मानव वैसा

: ५५ :

विवक्षा-पाठ

मैं—ईशावास्योपनिषद् का सबेरे की प्रार्थना में जो पाठ होता है वह पद-पाठ है। पर उसे पद-पाठ भी नही कहा जा सकता, क्योंकि उसमे प्रत्येक पद अलग-अलग नही कहा जाता। उपसर्ग भी अलग कहे जाते हैं। कुछ पद, कुछ वाक्यांश कहे जाते हैं। कोई एक निश्चित पद्धति अपनानी चाहिए।

विनोबा—तमिल प्रबंधम् में केवल पद-ही-पद हैं, संहिता है ही नहीं। पदों में ही कहने-लिखने की पद्धति है। वही पद्धति हम क्यों न अपनायें? ईशावास्य उसी ढंग से याने पद-पाठ मात्र छापा जाय। संहिता न दी जाय।

मैं—या तो संहिता या पदपाठ और आगे बढ़कर अन्त सन्धि अलग करके उपसर्ग तथा धातुरूप भी अलग करने का आपका तरीका, जिसमे दोनों ढंग का समावेश है, मुझे पसन्द नहीं। इसके बदले मैं विवक्षा-पाठ पसन्द करूंगा। विवक्षा-पाठ मे गद्य-ग्रन्थ के बारे मे अर्थ के अनुसार सन्धि अलग करके वाक्यांश या संबद्ध पदसमुच्चय दिखाये जायंगे, पर हर पद अलग नहीं कहा जायगा। तस्यैव, ततश्च जैसे पद संहित ही रहेंगे। सब पदों का अलग-अलग उच्चारण संस्कृत मे कृत्रिम-सा लगता है। पद्य मे प्रत्येक चरण अलग करना, छन्दानुरोध से चरण के बीच की सन्धि अलग करना (जैसे—आपूर्यमाणम् अचल-प्रतिष्ठम्—इस प्रकार संधि-विच्छेद किये बिना संहिता-पाठ करने से छंद बिगड़ जाता है और अर्थबोध का सौंदर्य भी नही रहता), विरामीकरण करना (जैसे—स शान्तिमाप्नोति, न कामकामी), कहीं-कहीं अर्थ प्रकटीकरण के लिए संहिता या छन्द को ताक पर रखकर पदों को अलग करके कहना (जैसे—वायुरनिलममृतम् के बदले वायु अनिलं अमृतम्) आदि रहेगा।

विवक्षा से मतलब मूल ग्रंथकार की विवक्षा जो मेरी दृष्टि में उचित है, उसके अनुसार पाठ याने विवक्षा-पाठ।

इस प्रकार लिखी-पढ़ी जानेवाली संस्कृत को मैं सुसंस्कृत कहूंगा।

विनोबा बोले—ठीक, सुसंस्कृत याने सुलभ संस्कृत।

मैं-पुराना अक्षरराशिलेखन इस दृष्टि से असंस्कृत ही कहा जाता।

मासूर की राह पर,
३०-१२-५७

: ५६ :

जागतिक लिपि

मैं—हिन्दुस्तान में तीन लिपियां रहें—१. नागरी, २ रोमन, ३ अरबी

विनोबा—पर तीनों सब जगह रहें सो बात नहीं। अरबी वहीं वहीं चलेगी।

मैं—नागरी और रोमन का चलन सार्वत्रिक हो। रोमन जागतिक लिपि है।

विनोबा—नागरी ही चीन-जापान आदि एशियाई राष्ट्रों के लिए नजदीक की लिपि रहेगी।

मैं—एशिया में अरबी हिन्दुस्तान के पश्चिम में, और नागरी हिंदुस्तान तथा पूर्वी देशों में चलने की संभावना है। पर ये तीन लिपियां तथा चौथी चीनी अपनी-अपनी विशेषता रखती हैं। इनमें सबसे अधिक सर्व तथा सुगम लिपि रोमन ही है। वही जागतिक लिपि का आदर पावेगी। हिन्दुस्तान में भी सब भाषाएं उसे स्वीकार करें। अब हमें सिर्फ राष्ट्रीयता का ही खयाल नहीं करना चाहिए। हम अन्तर्राष्ट्रीय हैं, विश्वमानव हैं। इस दृष्टि को लेकर ही निर्णय करना चाहिए। लेकिन जब तक यह नहीं होता, तब तक यूरोप में जिस प्रकार रोमन लिपि है, वैसे ही भारत में सब भाषाओं के लिए नागरी अपनाई जाय। इसको भी मैं बहुत बड़ी प्रगति मानूंगा। उसके पहले नागरी में कुछ सुधार कर लेना उचित होगा। मैं मानता हूं कि उसका दिग्दर्शन लोकनागरी द्वारा किया जा चुका है।

विनोबा—रोमन ही लिपि जागतिक लिपि के सम्मानित पद पर

प्रागीन होगी, यह बात जागतिक समस्याओं को कौन हल करेगा, इसपर इसके पराक्रम पर निर्भर होगी । पश्चिम की बुद्धि का दिवाला निकल गया है । इस कारण अब पूर्व की तरफ आंखें मुड़ जाती हैं ।

: ५७ :

कणिका—६

ॐकार

१. मैं—मेरे मन में एक विचार आया कि ॐ केवल अ, उ, म् का समाहार नहीं । इसलिए उसे 'ओम्' नहीं लिखना चाहिए । 'ॐ' ही उसकी विशिष्ट मूर्ति है । वह एकजीव समग्र ध्वनि है । कंठ, ओष्ठ, नासिका में से एकदम एकत्र निकलनेवाली वह ध्वनि है । सर्ववर्णों का आदिवर्ण है, इतना ही नहीं, वेदों का और सृष्टि का भी आदि है, सर्वादि है । वह वही है, जिसका वर्णन यों किया जाता है—'त्वत्तः सर्वं जगदिदं जायते ।' ॐ तत्सद् इति निर्देशो ब्रह्मणस् त्रिविधः स्मृतः । ब्राह्मणास् तेन वेदास् च यज्ञास् च विहिताः पुरा ॥ बहुतकर गीता ने उसका सर्वमूलत्व, सर्वादित्व वर्णन किया है । सचराचर व्यक्त सृष्टि का यानी अखिल विश्व का वह अव्यक्त मूल है । व्यक्तमात्र क्षर है तो वह है अक्षर । अतः वह मूलाक्षर कहलाता है ।

विनोबा—पुरानी मराठी में 'ओ' ही ॐ लिखा जाता था । तो ओम् और ॐ में वैसा फर्क नहीं । वह रासायनिक संयोग है, एकजीव है, यह बिल्कुल सही है । 'उपनिषदों के अध्ययन' में उसका विवेचन किया गया है ।

... ...

एफ. एफ. टी

२. मैं—अहमदाबाद में एफ. एफ. टी (F.F.T) यानी सन्मित्रपरिवार (The Fellowship of the Friends of Truth) की वार्षिक सभा होनेवाली है । उसका मैं एक सदस्य हूं । दोनानंद भी हैं । बापू ने अनेकानेक संस्थाएं स्थापित कीं, चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ, तालीमी संघ, हरिजन सेवक संघ आदि । पर सर्व-धर्म-समभाव के लिए कोई संस्था उन्होंने नहीं

साधन थी। उस कार्य के हेतु यह संस्था बनी है। बापू का उसे आशीर्वाद था। उसके कार्य के बारे में आपकी अपेक्षा क्या है?

विनोबा—संपत्तिदान और ग्रामदान का कार्य वे करें। यह कार्य सर्व-धर्मानुकूल है।

मैं—यह संस्था मुख्यतः मानसिक, बौद्धिक कार्य करने के लिए है, हार्दिक ऐक्य-संपादन के लिए है। सांस्कृतिक समन्वय उसका प्रमुख उद्देश है। उन लोगों को शांतिसेना का कार्य सुझाया जा सकता है।

विनोबा मग्नमनस्क से दिखाई दिये। कुछ बोले नहीं।

रत्नायन की समाप्ति

३ डोनाल्ड—सन् ५७ समाप्त होने को है। मुझे लगता है कि जिन्होंने अबतक भूदान, संपत्तिदान आदि किया है, उन सबसे व्यक्तिगत संपर्क बनाये रखने के लिए हरेक को आप एक पत्र लिखें। उसमें संपन्न कार्य के लिए आस्था तथा होनेवाले कार्य के लिए दिशादर्शन रहे।

विनोबा—मैं भी सोच रहा हूं। पर १ जनवरी, १९५८ के बदले ३० जनवरी या १२ फरवरी को वह किया जाय।

मासूर की राह पर,
३०-१२-५७

: ५८ :

भगवान् बुद्ध

वेद-निंदक

मैं—बुद्ध को कई लोग नास्तिक मानते हैं। 'नास्तिको वेदनिंदक' यह है उनकी नास्तिक की परिभाषा। "निंदसि यज्ञविधे रहह श्रुतिजातम्। सदयहृदय दर्शित पशुघातम्। केशव धृतबुद्धशरीर।" इसमें भी बुद्ध को वेदनिंदक बताया गया है। तुलसीदास ने भी कहा है—

श्रतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार।
जो निंदत निंदित भयो, विदित बुद्ध अवतार॥

वास्तव में कहीं भी बुद्ध ने वेद की निंदा नहीं की। जाति-पाँति के विरोधी देखकर जातिवादियों ने उनपर यह झूठा इलजाम लगाया है, उनकी निंदा की है, बदनामी की है। बुद्ध के समय में और इसके अनंतर भी भगवान बुद्ध का आदर ब्राह्मण करते थे। उनके धर्म-प्रचारक और प्रमुख शिष्य सारिपुत्त तथा मोग्गलान इत्यादि ब्राह्मण ही थे। बुद्ध के मन में भी ब्राह्मणों के लिए नितांत आदरभाव था। धम्मपद का अंतिम वर्ग, जो सबमें बड़ा वर्ग है, ब्राह्मण-वर्ग है। पर आगे चलकर बौद्ध राजाओं को परास्त करने के लिए हिंदू राजाओं ने जो सर्वतोमुखी प्रयास किया, उसका एक मौलिक तथा प्रभावी अंग था बुद्ध, धर्म तथा संघ की निंदा, बदनामी और विपर्यास। 'एकच्छत्रा पृथिवी भविष्यति कलौ युगे।' 'संमोहाय सुरद्विषां बुद्धो नाम्नाऽजनसुत कीकटेषु भविष्यति' आदि भागवत के तथा अन्य हिंदू ग्रंथों के वचन इसी प्रवृत्ति के द्योतक हैं। यज्ञयागों की निंदा तो खुद उपनिषदों ने भी की है—'प्लवा ह्येते ह्यदृढा यज्ञरूपा' आदि में। निरीश्वरवादी हैं, इसलिए बुद्ध को नास्तिक कहा जाय तो कपिल मुनि क्या थे? आपका क्या अभिप्राय है, इस विषय में?

नारायण हमारी पसंदगी की चीज देता है

विनोबा—जो पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा कर्मफल में विश्वास करता है, स्वर्ग, नरक तथा मोक्ष में जिसकी श्रद्धा है, वह कैसा नास्तिक, निरीश्वरवादी और अनात्मवादी? अंतिम तत्त्व, परमार्थ शब्दातीत है। विष्णु सहस्र नाम में कहा है—'शब्दातिगः शब्दसहः।' शब्दातीत वस्तु का वर्णन करने में कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। मतभेद की गुंजाइश यहीं है। जो कल्पना अधिक तर्क-सुगम हो, उसे लेना पड़ेगा। तो भी इसमें पसंदगी का भी सवाल है। नारायण हमारी पसंदगी की वस्तु देता है। किसीको अद्वैत, किसीको द्वैत तो किसीको विशिष्टाद्वैत भाता है। बुद्ध ने एक अलग रुचि दिखाई है तो उसमें क्या हर्ज है? वेदान्त में वह शुमार ही है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत सब वेदान्त ही है। वैसे ही बुद्ध का भी अपना निजी वेदान्त है। धम्मपद की वेदान्ती टीका क्यों न की जाय?

आत्मा

धम्मपद में आत्मा शब्द बार-बार आता है। वहां हर बार बौद्धों को बताना पड़ेगा कि 'आत्मा' यहां वेदान्ती आत्मा नहीं है। हमें ऐसा कुछ नहीं करना पड़ेगा। 'अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया'। यह क्या है? 'आत्मैव ह्यात्मनो बंधुः'। इन दोनों में क्या अन्तर है? आप कहते हैं कि आत्मा प्रवाहरूप नित्य है; पर वही मैं हूं यह अनुस्मरण उनके मत में संभव है? 'ब्रह्मसूत्र' में 'अनुस्मृतेश्च' सूत्र में आत्मा का निरंतर एकत्व कूटस्थ साक्षी के रूप में निरूपित है।

वासना-निर्वाण और ब्रह्म-निर्वाण

बौद्ध निर्वाण में वासना-निर्वाण का अभिप्राय है, तो उसको उपमा दीप-निर्वाण की देते हैं। उस अवस्था को शून्य कहते हैं। पर गीता उस निर्वाण को ब्रह्म-निर्वाण मानती है, और उसे जलती दीपज्योति की उपमा दी जाती है। "यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता। योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः॥" गीता ज्ञानावस्था को महत्त्व देकर बोलती है तो बौद्ध विचार में वासना-क्षय को महत्त्वपूर्ण माना है। दोनों मेरी राय में एक ही हैं। 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' में अंत में मैंने बताया ही है—एकं ब्रह्म च शून्य च यः पश्यति स पश्यति।

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म में विश्वास करने के लिए दो कारण हैं—

१. बचपन से ही मेरी पसंदगी में विशेषता क्यों? किसी विषय की ओर मुझे खिंचाव नहीं है, यह किस बात का लक्षण? पूर्वजन्म में उसका अनुभव लेकर उस विषय में मैं निस्पृह बन गया हूं, उसमें मुझे कुछ सार नहीं दिखाई देता, इसीका वह लक्षण है। अन्य लोग गृहस्थी में फंस जाते हैं, उनके बारे में मेरे मन में तुच्छता का भाव नहीं। इसका अर्थ यही है कि उनकी साधना अबतक अधूरी हो रही है। उन्होंने अनुभव नहीं पाया है।

२. एकाध बच्चा एक साल की उम्र पूरी करने के पहले ही मर जाता इसका क्या कारण है? उसका पूर्व-कर्म ही इसका कारण हो सकता

'षड्दर्शन' पर व्यग्यात्मक कविता

यह सब ग्रथ, षड्दर्शन, जब मैंने पढ़े तबकी वह कविता है, जिसमें तुम कहते हो कि षड्दर्शनों का औपरोधिक वर्णन मैंने किया है। मैं कहा करता था—"गाय के चार पैर होते हैं, टेबल के चार पैर होते हैं। अब ये पैर, जिनका वर्णन तुम करते हो, सचमुच हैं या नहीं है ? विद्यमान पैरों का वर्णन हो तो जो दिखाई देता है उसका वर्णन करने से क्या लाभ ? अगर अविद्यमान हों तो तुम मिथ्या बोलते हो। तो इस चर्चा से क्या लाभ ? मटका कैसे पैदा हुआ ? तुम चर्चा करते हो। जो मिट्टी मे विद्यमान था वही मटका बनाया गया, या जो अविद्यमान था ? अगर वह मिट्टी में था ही नही तो वह आया कहा से ? मिट्टी में नहीं था तो भी वह उसमें से निकला, यह अगर तुम्हारा कहना हो, तो दही से मटका क्यो नही बनता ? ये चर्चाए चलाते तुम बैठो, चाहे तुम किसी निर्णय पर पहुचो या न पहुचो, कुम्हार अपना मटका बनाता ही है।"

मूर्तिपूजा की कड़ी आलोचना

बिहार के किसी गाव मे मैंने मूर्तिपूजा पर बड़ी कडी आलोचना की। 'लोग पत्थर की मूर्ति की पूजा करते-करते खुद पत्थर बन चुके हैं, वे सगदिल बन गये हैं। उनमे न करुणा है, न उनका दिल दया से द्रवित होता है।' मेरा वक्तव्य सुनकर एक भक्त बडे नाराज हो गये। वह बोले—आपका 'गीता-प्रवचन' पढकर, उसमे जो तुलसी-पूजा, आरती, धूप आदि की चर्चा है उसे पढकर, मैं आया, पर आपने मेरी श्रद्धा को चूर-चूर कर डाला। लोगो ने उन्हे समझाया—बाबा दोनों तरफ से बोलता है।

हिंदूधर्म का सर्व-धर्म-समन्वय

तत्त्ववाद भले ही भिन्न-भिन्न हो, पर साधना के बारे मे भारत-भर मे एकमत है। हिंदूधर्म ने सर्व-धर्म-समन्वय किया है। राजम्मा के पिताजी कट्टर हिंदू है, पर उनके देवगृह मे ईसा की तस्वीर बिना किसी विरोध के रह सकती है। इन रेकन्सिलिएशन वालों की बात इसके विपरीत है, वे यह मानने को कतई तैयार नही हैं। ईसा की श्रद्धा के बिना मुक्ति मिल सकती है। कम-से-कम यह है कि औरों की अपेक्षा ईसा का महत्त्व उनके लेखे

धिक है।

मास्तिक ईश्वर को नही मानता। पर वह प्रामाणिक है। आस्तिक ईश्वर को मानते हुए भी भेद को आश्रय देता है। यह अप्रामाणिकता है। जब ईश्वर एक ही है तो उसके भक्तो को चाहिए वे भेदभाव को हटाकर एक हो जाय।

मासूर के मार्ग पर,
१०-१२-५७

: ५६ :

कणिका—१०

पांच धर्म-तत्त्व

१. मैं—आप कहते हैं कि आज दुनिया मे केवल श्रद्धा (Faith) है, एक धर्म-श्रद्धा है, पर अबतक धर्म नही बना। तो धर्म के कुछ तत्त्व बताइयेगा।

विनोबा—स्वामित्व-विसर्जन, सत्य, अहिंसा, सयम तथा श्रमनिष्ठा ये हैं धर्म-तत्त्व। नवसमाज की रचना इन्हीपर आधारित रहे। ग्राम सेवा-मडल, सर्व सेवा सघ और काग्रेस इन सस्थाओ के साथ मेरा सबध रहा है। सबको चाहिए कि वे इस कार्य को अपनाले।

सर्वज्ञ और कवीर

२. मासूर (जि० धारवाड) सर्वज्ञ नामक कन्नड कवि का जन्म-स्थान है। उसका जन्म ईसा की तेरहवी सदी मे हुआ। उसका पिता था ब्राह्मण और माता थी कुम्हार-कन्या। कबीर की भांति उसने सब विषयों पर सुभाषित उक्तियां कन्नड मे लिखी हैं। अनत रगाचारी ने कल की प्रार्थना-सभा मे सर्वज्ञ के कई वचन गाये थे। उसे लेकर आज सवेरे पदयात्रा मे चर्चा छिड गई।

कामाक्षी—कल आपने कहा कि सर्वज्ञ कबीर जैसा था। आपका

कहना दूसरे अर्थ में भी ठीक है। कबीर की भांति ही सर्वज्ञ का जन्म हुआ था।

विनोबा—हिंदी में रहीम, तमिल में वेमन्ना, वैसे कन्नड़ में सर्वज्ञ सुभाषितकार कहा जा सकता है। कबीर की सूक्तियां भी मशहूर हैं। तो भी कबीर की योग्यता बहुत उच्च स्तर की है। उसके समान असाम्प्रदायिक स्वतंत्र विचारवाला पुरुष विरला ही मिलेगा। उसकी रचना गूढ़ है। कबीर के नाम पर प्रचुर कविता मिलती है, पर सब उसकी नहीं है।

हिंदी-प्रचार 'धंधा' बन गया है !

कामाक्षी—हिन्दी की परीक्षा में कबीर, तुलसी आदि हिन्दी कवियों की रहस्यवादी तथा भक्तिपरक रचनाएं और उनकी समालोचना निपुरा रहती है। कितने ही विषय रहते हैं।

विनोबा—हिन्दी के अध्ययन के लिए पुराने पद्य-साहित्य तथा साहित्य-चर्चा की क्या जरूरत ? इन लोगों का यह 'धंधा' बन बैठा है। उस दिन बेंगलूर में मैंने कहा—जब हिन्दी का प्रचार जारी है तो और गांधी-विचार-प्रचार की क्या आवश्यकता ? हिन्दी की पढ़ाई, हिन्दी का प्रचार गांधी-साहित्य का, गांधी-विचार का ही प्रचार है। पढ़नेवालों को गांधी-रीति पढ़ानी है कि रसरीति ?

... ...

आज्ञा मेरी रीति नहीं है

३. कल नारायण का पत्र आया। उसमें उसने एक बड़े महत्त्व की बात का उल्लेख किया है। वह कहता है—"पिछले छ-सात सालों में आपने कभी मुझसे नहीं कहा कि यह करो या वह करो।" यह मेरी रीति ही नहीं है। कभी-कभी मैंने सीधे किसीको कुछ करने की आज्ञा की है। उस वक्त मैं हार गया था, मात खाई थी। मैंने बापू के बारे में भी यह बात देखी है। वह भी किसीको कभी कुछ करने, न करने की आज्ञा नहीं सुनाते थे। पर कभी-कभी उन्हें आज्ञा करनी पड़ी और उससे काम बिगड़ गया।

... ...

गुरुजी के बारे में मेरी गलती

४. बाहर आने में मुझे देर हो गई। मेरा कार्य पहले शुरू हो जाता

ही गुरुजी रह जाते। उन्हें सीधा आदेश देना मेरा कर्तव्य था। पर वह मेरी गलती हो गई।

... ...

बाघिन का दूध पीकर क्रूर बने

५. विट्ठलपुणतरजी अंग्रेजी विद्या को बाघिन का दूध कहा करते। उनकी धारणा थी कि उससे हम शूर बन जायेंगे। मुझे लगता है कि क्रूर बन गये हैं। मनुष्य से जानवर बन गये और वह भी जंगली। मुझे लगता है कि गाय का दूध ही अच्छा। पर उसकी चाह नहीं चाहिए। मां का दूध पी लिया है, वही पर्याप्त है।

... .

घुमक्कड़ी करो

६. विनोबा—दातारजी साठ साल पूरे कर रहे हैं, आपकी क्या उम्र है, कुटेजी ?

"पांच साल बड़ा हूं।"

"याने मुझसे तीन साल। आप हर रोज ५-६ मील घूमते रहिये।"

"आपके साथ ८-१० मील भी चल सकता हूं, पर अकेले घूमना मुश्किल लगता है।"

मैं—विनोबा बचपन से ही घूमा करते हैं। पर वह अकेले शायद ही घूमे हों। चार-पांच को साथ लेकर ही वे घूमने जाते थे और अब भी जाते हैं।

विनोबा—सुंदर दोष कहता है। साधना समाज के साथ ही की जानी चाहिए। एकान्त में भी मानसिक समाज हुआ ही करता है। घरने में समाज की कल्पना करते हुए साधना की जाय।

..

ब्रह्म और ब्रह्मविद्

७. ब्रह्म होना याने राम होना। केवल ब्रह्मदर्शन नहीं हो, बल्कि लिए भी। जो ब्रह्म हो गया वह अपनेको कोई विशेष अर्थ में नहीं अनुभव करता। वह सबसे एकरूप बन गया। उपनिषद् कहते हैं 'ब्रह्म ब्रह्मैव भवति, न ब्रह्मवित्'। बड़ा मार्मिक वचन है यह। ब्रह्मविद् अलग होता है

यह ब्रह्म नहीं है। ब्रह्म होना याने भगवान का भोर हो जाना।

... ...

रामायण की रमणीयता

८. आज रामायण में राम के राज्याभिषेक की तैयारियों का वर्णन पढ़ा। पर राम ने पहले अपना अभिषेक नहीं करवाया। उसने कहा कि चतुः-समुद्र और सब नद-नदियों के जल से पहले सुग्रीव आदि को नहलाया जाय। उसने पहले अपनी जटाओं को नहीं, भरत की जटाओं को अपने हाथों सुल-झाया। (वहां 'निर्जटा' कहा गया है। उसने स्वयं बाल काटे या जटा सुलझाई ?) ईसा ने ठीक यही किया। उसने अपने हाथों अपने चेलों के चरण धोये। इस कारण ही रामायण हमारे सिर आंखों पर है।

राम में साम्ययोग कैसा रोम-रोम में समा गया था ! प्रथम वन जाने से पहले जब राजतिलक निश्चित हुआ और व्रत, उपवास आदि की सूचना देने कुलगुरु वसिष्ठ राम के पास आये तब राम कहता है—"आप क्यों आये! मैं ही आपके पास आ जाता," और बाद में कहता है—"इस रघुकुल में सब-कुछ ठीक है, पर अकेले ज्येष्ठ पुत्र को गद्दी पर बिठाते हैं, यह ठीक नहीं।" हम सब भाई साथ-साथ खेले, साथ ही पढ़ाई की, साथ खाया, साथ पिया और राज्य मुझ अकेले को दिया जा रहा है, सो कैसे ? इसका उसे बड़ा अचरज मालूम हुआ। बाद में जब वन जाना तय हुआ, तब उसके आनन्द का क्या कहना ! जैसे जंगल से पकड़कर लाया हुआ और जंजीरों से जकड़ा हुआ हाथी छुटकारा पा जाय और आनन्द से, खुशी से, वन की ओर दौड़ता चले, वैसे ही राम वन जाने के लिए उत्सुक हो उठा। यह है रामायण की रमणीयता।

जिप्सी मेरे पैरों में प्रकट है

९. आज दोपहर को मंगेश पाडगावकर, और पु. ल. देशपांडे आये हैं। प्रार्थना-प्रवचन के बाद वह थोड़ी देर के लिए विनोबा के पास बैठे थे। मंगेश ने अपनी कुछ कविताएं पढ़ सुनाईं। अन्त में जिप्सी कविता गाई।

विनोबा बोले—"आजकल लोग निर्यमक पद्य लिखने लगे हैं। आपका सयमक गद्य मालूम देता है। जिप्सी आपके मन में छिपा हुआ है,

पर मेरे पैरों में प्रकट है !"

पु. ल. देशपांडेजी ने भी एक राजस्थानी गीत सुनाया और साने गुरुजी के उपवास के कारण पंढरपुर के विट्ठल-मंदिर में हरिजनों को प्रवेश मिला उस प्रसंग को लेकर लिखा हुआ स्वकृत पद्य भी।

नेल्लयागोलू के मार्ग पर,
२१-१२-५७

: ६० :

जीवन का शास्त्रीय नियोजन

वह ब्रह्म नही है। ब्रह्म होना याने अलगपन का लोप हो जाना।

.. ..

रामायण का रमणीयत्व

८. कल रामायण मे राम के राजतिलक की तैयारियों का वर्णन पढ़ा। पर राम ने पहले अपनेको अभिषेक नही करवाया। उसने कहा कि चतु-समुद्र और सब नद-नदियो के जल से पहले सुग्रीव आदि को नहलाया जाय। उसने पहले अपनी जटाओ को नही, भरत की जटाओं को अपने हाथों सुलझाया। (वहा 'नियराए' कहा गया है। उसने स्वयं बाल काटे या जटा सुलझाई ?) ईसा ने ठीक यही किया। उसने अपने हाथों अपने चेलों के चरण धोये। इस कारण ही रामायण हमारे सिर आखो पर है।

राम मे साम्ययोग कैसा रोम-रोम मे समा गया था! प्रथम वन जाने से पहले जब राजतिलक निश्चित हुआ और व्रत, उपवास आदि की सूचना देने कुलगुरु वसिष्ठ राम के पास आये तब राम कहता है—"आप क्यों आये! मैं ही आपके पास आ जाता," और बाद मे कहता है—"इस रघुकुल में सब-कुछ ठीक है, पर अकेले ज्येष्ठ पुत्र को गद्दी पर बिठाते हैं, यह ठीक नहीं।" हम सब भाई साथ-साथ खेले, साथ ही पढ़ाई की, साथ खाया, साथ शिक्षा और राज्य मुझ अकेले को दिया जा रहा है, सो कैसे ? इसका उसे बड़ा अचरज मालूम हुआ। बाद मे जब वन जाना तय हुआ, तब उसके आनन्द का क्या कहना! जैसे जगल मे पकड़कर लाया हुआ और जजीरों मे जकड़ा हुआ हाथी छुटकारा पा जाय और आनन्द से, खुशी से, वन की ओर दौड़ता चले, वैसे ही राम वन जाने के लिए उत्सुक हो उठा। यह है रामायण की रमणीयता।

जिप्सी मेरे पैरों में प्रकट है

९. आज दोपहर को मंगेश पाडगावकर, और [illegible] देशपांडे आये हैं। प्रार्थना-प्रवचन के बाद वह थोड़ी देर के लिए विनोबा के पास बैठे थे। मंगेश ने अपनी कुछ कविताएं पढ़ सुनाई। अन्त मे जिप्सी कविता गाई।

विनोबा बोले—"आजकल लोग निरंतर यह लिखते रहते हैं। आपका इसमें यह मालूम देता है। जिप्सी आपके मन में [illegible]

पर मेरे पैरों में प्रकट है !"

पु न देशपांडेजी ने भी एक राजस्थानी गीत गुनाया और साने गुरुजी के उपवास के कारण पंढरपुर के विट्ठल-मंदिर में हरिजनों को प्रवेश मिला उस प्रसंग को लेकर लिखा हुआ स्वकृत पद्य भी।

नेलपाणीनू के मार्ग पर,
३१-१२-५७

: ६० :

जीवन का शास्त्रीय नियोजन

विनोबा—आज टा दानार अपने साठ साल पूर्ण कर रहे हैं। उसके उपलक्ष में आपने तय किया है कि आगे का समस्त जीवन शुद्ध निष्काम सेवा में लगायेंगे। इस निश्चय के लिए वह भगवान की दुआ माग रहे हैं। वैसे तो उनका समूचा जीवन सेवा में ही व्यतीत हुआ है। आजतक उन्होंने जो पेशा अपनाया था उसमें दुखी मानवता की सेवा ही उन्होंने की है। वह सर्जन थे। हजारों की तादाद में उन्होंने आपरेशन किये। मतलब यह कि दुखियों के दु खमोचन का काम किया। रोग से, दु ख से, मुक्ति तो भगवान ही देते हैं, डाक्टर केवल चीर-फाड किया करता है, यह भी वह जानता है। इस सेवा को निष्काम नहीं कहा जा सकेगा। उसमें अपेक्षा थी। पर उसे अब वह छोड़ चुके हैं और साहित्य-प्रचार का, भूदान का कार्य कर रहे हैं। पर अबतक वह आंशिक समय दे सके हैं। घरेलू झंझटों में फसे हुए थे, इससे पूरा समय नहीं दे सकते थे। अब उनसे मुक्त हो गये हैं। चाहते हैं कि आगे इस कार्य में पूरा समय देंगे। शान्तिसैनिक भी होना चाहते हैं।

६० साल की उम्र ऐसी अवस्था होती है कि उस वक्त आदमी के विचार पक्के हो जाते हैं। शरीर तथा मन की तृप्ति हो गई होती है। अनुभव प्रचुरता से इकट्ठा हुआ होता है। इनकी बदौलत आगे का जीवन एक निश्चित पद्धति से तथा बुद्धि की स्थिरता को लिये हुए बीत सकता है। भारतीय समाज का एक बड़ा गुण यह है कि मनुष्य का मानसिक विकास

गुप्तवरिपन रीति से फँसा हो इसका मार्ग-दर्शन उसने ठीक-ठीक किया है। मनुष्य-जीवन की कई अवस्थाएं होती हैं। शेक्सपियर ने सात अवस्थाएं मानी हैं। यह नाटककार था। उसने मानव-जीवन की सात भूमिकाएं मानी हैं। भागवत में भी मानवजीवन की भूमिकाओं का वर्णन पाया जाता है। उनको शास्त्रीय रूप प्रदान करने का काम हमारे शास्त्रकारों ने किया है। मनुष्यजीवन के विभाग शास्त्रीय पद्धति से किये गए हैं। छुटपन में ब्रह्मचर्य वेदाध्ययन, गुरुसेवा; युवावस्था में गृहस्थाश्रम, गृह-सेवा, कर्मयोग, यज्ञ, दान, तप आदि; उसके बाद वानप्रस्थ याने गृहमुक्त सेवा, और आगे केवल ईश्वरचिंतन। ज्यों-ज्यों इस विषय में विचार करता जाता हूं, त्यों-त्यों में विस्मयविमुग्ध हो जाता हूं। ऐसी योजना के बिना भी ज्ञानी लोग जग में संचार करते हैं। पर अज्ञानी लोगों के लिए शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की व्यवस्था कर रखी है। प्रशस्त मार्ग बनने पर आंखवाले के पीछे-पीछे अंधा भी मार्गक्रमण कर सकता है। ऐसा ही एक सुगम मार्ग शास्त्रकारों ने बना रखा है। परम ज्ञानी को यह आवश्यक नहीं कि वह एक-एक सीढ़ी को पार करता जाय। शंकराचार्य ने कहा है कि ऐसे ज्ञानी 'ब्रह्मचर्यादेव' 'कृतसंन्यासा:' होते हैं। बीच की सीढियां—गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम उन्होंने छोड़ दी थी। पहली सीढी से कूदकर ही वे अंतिम सीढी पर पहुंच गये। शुक, ज्ञानदेव, ईसा इसके उदाहरण हैं। यह योग्यता बड़े भाग्य का लक्षण है। वह महान पुण्य है। ईश्वर की वह कृपा है। तभी वह सिद्ध होता है। ईसा से उसके चेलों ने पूछा—"बिना गृहस्थाश्रम का अनुभव किये, उसमें प्रविष्ट हुए बिना ही क्या आदमी को ऐसी हरिशरणता का ज्ञान हो सकता है?" ईसा ने कहा—"वह तो उन्हींको मिलेगी, जिनको वह ईश्वरदत्त है (To whom it is given)। (यहां विनोबा गद्गद् हो चुप हो गये, आंखों से आंसू बहने लगे।) तो यह पूर्वपुण्य का फल है। लेकिन जो इस पूर्वपुण्य के भागी नहीं हैं और गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम में से होकर आखिरी सीढी तक पहुंच गये उनकी पुण्यवत्ता भी कम नहीं। उनका पूर्वपुण्य भले ही कम रहे, पर इस जन्म का बहुत है। तो ऐसा यह मार्ग हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए प्रशस्त कर दिया है। उसका पुनरुज्जीवन करना है। उसके लिए नितांत उपयुक्त ये मंत्र हैं, उनका उच्चार हम यहां

करें—

१. सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥

२. सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्ति ऋषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥

सत्य से आत्मलाभ होता है, तप से आत्मलाभ होता है। कोई मारता है तो उसे बरदाश्त करो, कोई गुस्से से भर जाता है तो उससे प्यार से बातें करो। यही तप है। इसीको आजकल अहिंसा कहते हैं। सम्यग् ज्ञान से और ब्रह्मचर्य याने मनोनिग्रह से आत्मदर्शन मिलता है। इन साधनों से होनेवाला आत्मदर्शन कहां होता है? अन्त शरीरे—अन्दर, अपने शरीर में एक स्थान होता है वहा। ज्यों-ज्यों दोष क्षीण होते जाते हैं त्यों-त्यों उसका दर्शन अस्फुट से स्फुट होता जाता है।

ईश्वर के पास पहुचने का मार्ग सत्य से बना है। उस मार्ग से जाना कहा है? तो जहां वह सत्य का परम निधान है। वह ईश्वर सत्य का खजाना है, भडार है। जिस साधन या वाहन से जाना है, वह भी सत्य है। मतलब यह कि मार्ग सत्य, घोडा—वाहन—सत्य, और जहा पहुचना है वह अन्तिम साध्य, वह स्थान भी सत्य ही है। इस प्रकार सत्य ही साधन, सत्य ही मार्ग और सत्य ही मंजिल है। यह है सत्य का मार्ग।

निश्चय या सकल्प करने के लिए जरूरत नहीं कि अमुक आयु पूर्ण हो। जिस दिन सुझाव मिला उसीको शुभ समझकर उसी दिन से सकल्प किया जा सकता है। पर किसी विशिष्ट दिन में चिंतन संभव होता है। स्वाभाविक है कि ६० साल पूर्ण करने पर विशेष चिंतन का अवसर मिला। डा दातार के लिए और हम सबके लिए ही प्रार्थना करें कि हम सबका जीवन निष्काम सेवा में व्यतीत हो।

शिकारपुर के मार्ग पर,
१ जनवरी १९५८

: ६१ :

लौट आओ

जब मैं बोलना चाहता था या कोई महत्त्व की चर्चा सुनना चाहता था तब विनोबा के साथ पहली कतार मे चलता था, अन्यथा भीड़ मे दूर दूसरों से बोलता रहता था। आज भी वैसे ही पीछे था। शिकारपुर के लोग स्वागत के लिए आये थे। रास्ते मे भीड़ बढती जा रही थी। इसलिए मैं एकदम पीछे था। इतने मे गुह्याचारी आये और बोले कि विनोबा आपको याद कर रहे हैं।

धम्मपद हमारा ही ग्रथ

मैं विनोबा के पास गया। वह बोले—

अब तुम पूना मे रहकर काम करो। तुम्हारा काम यहा ठीक नही होगा। एक जगह बैठकर उसे करना है। तुम्हे इतने दिन यहां ठहरा लिया, इसलिए कि तुम्हें यात्रा का अनुभव मिले। कोश का काम पूरा करके २६ तारीख को हुबली आ जाओ। धम्मपद के सरल मराठी अनुवाद का काम करेंगे। धम्मपद अपना ही ग्रथ है। उसे रिक्लेम करना है। उसका रूप भी अपना ही है, अलग कुछ नही। तो भी परिभाषा के कारण और गलतफहमी की बदौलत वह उपेक्षित रहा है। उसे अपना रूप दिलाना है, अपना बनाना है।

जैसा पुराण, वैसा कुराण

एक बार बापू को मैंने एक पत्र लिखा था। उसमे लिखा था कि मैं अब कुराण का अध्ययन कर रहा हू। बापू ने लिखा—हम 'कुरान' लिखते हैं, तुम 'कुराण' क्यो लिखते हो ? उसके जवाब में मैंने लिखा कि वह कुरान का हमारा रूप है। जैसा पुराण, वैसा कुराण। वह कुछ पराया नही है। आत्मीयता उससे बढ जाती है। अपना रूप दिये बगैर वह शब्द आत्मसात् नही हुआ करता।

बापू ने यह भी लिखा था—अगर तुम कुराण के अध्ययन के लिए कुछ किताबे वगैरा चाहते हो तो लिखो। मूल अरबी में पढ़ने के पूर्व कुराण के

द-गात अनुवाद में पढ़ चुका था। पिक्थॉल, अमरअली, मोहम्मदअली, देवबन, शिबली और निजामी के किये अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी, मराठी अनुवाद में पढ़ गया था। मुझे ऐसा लगा कि ये अनुवाद मूल धात्वर्थ से दूर ले जा रहे हैं, इसलिए मूल अरबी में उसे पढ़ने का निश्चय मैंने किया।

प्रवेश-द्वार

मैं—गणित, व्याकरण और मनोविज्ञान अन्य सब विद्याओं के प्रवेश-द्वार माने जाते हैं। गणित विज्ञान का, व्याकरण साहित्य का और मनोविज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान का प्रवेश-द्वार है। वैसे ही मुसलमान भाइयों के हृदय में प्रवेश करने के लिए कुरान को ही प्रवेश-द्वार मैं मानता हूं। आपने इसका अध्ययन मूल ग्रंथ से किया सो ठीक ही किया। धम्मपद के द्वारा समूचे बौद्ध जगत में हमारी पैठ होगी। इसलिए मुझे यह काम रोचक और महत्त्वपूर्ण जचता है। अठारह साल पहले ही धम्मपद का समश्लोकी अनुवाद मैंने किया है। उसमें मेरा उद्देश्य था अपनी वाणी को पवित्र करना।

सब धर्मों का अध्ययन वेदाध्ययन ही

"जगत् के सब धर्मग्रंथ इस प्रकार मैं मराठी में ला रहा हूं। केवल धम्मपद में नहीं तो इस प्रकार के सारे धर्मग्रंथों को मैं निदोंष करना चाहता हूं। इसे मैं धर्मसंकीर्तन समझता हूं। धर्म-कार्य ही मानता हूं। 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत' यह पुरातन सीख है। मुझे लगता है कि सार्वजनिक धर्मग्रंथों के अध्ययन से उसे मैं कार्यान्वित कर रहा हूं। मतलब कि यह मेरा वेदाध्ययन ही चल रहा है, यह मेरा विश्वास है। सोचते हुए मेरे मन में यह विचार आया।

शिकारपुर,
१-१-५८

•